CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

1.6.2

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ग संख्या..... प्राप्ति-संख्या.....

ग्रन्थ-कार्ड

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान

ग्रन्थागार

नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम ग्रन्थराज श्री पंचाध्यायी

लेखक पं० मक्खनलाल जैन

लेनेवाले का नाम	देनेकी तिथि	लेनेवालेका हस्ताक्षर	लौटानेकी तिथि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीसद्गुरुदेवाय नमः

November 1958.

मासिक आर्षटीका

वार्षिक मूल्य १०) रु० एक प्रति का मूल्य १) रुपया

अनुमानित श्रीअमृतचन्द्र आचार्यदेव कृत

ग्रन्थराज श्री पंचाध्यायी

अध्यात्मचन्द्रिका टीका सहित

तीसरा महा अधिकार

प्रमाण नय निक्षेप निरूपण

तथा

नय प्रमाण प्रयोग पद्धति

श्लोक नं० ५०३ से ७६८ तक

की दिव्य
की रु

संग्रहकर्ता तथा टीकाकार

पं० सरनाराम जैन,

छत्ता बारूमल, पो० सहारनपुर, यू० पी०

प्रकाशक

श्री दि० जैन धर्म प्रचारक पुस्तकालय,

पता—पं० सरनाराम जैन, छत्ता बारूमल,

पो० सहारनपुर, यू० पी०

महावीर प्रिंटिंग प्रेस, सहारनपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूचनायें

१—यह टीका प्रत्येक मास प्रकाशित होती है। मूल टीका पेज १२५ मूल्य एक रुपया। वार्षिक ग्राहकों से १२ टीका का रु० १०)। एक वर्ष में १५०० पेज मूल मैटर अवश्य दिया जायेगा अर्थात् एक रु० में १५० पेज जो अत्यन्त उचित मूल्य है। प्रकरणवश किसी टीका में कम तो किसी में अधिक किन्तु वर्ष में टोटल पूरा कर दिया जायेगा। अब तक ४३३ पेज निकल चुके हैं।

२—मन्दिर भण्डार, लाइब्रेरी, संस्था तथा विद्वानों से रु० ६) वार्षिक। यह धार्मिक संस्था है, अतः इस रियायत का दुरुपयोग न किया जाये।

३—जो विद्वान इतना भी न दे सकें, दे इच्छानुसार किसी भी कीमत में या निस्संकोच अमूल्य भेंट रूप में भी मंगवा सकते हैं। खास विद्वानों की सेवा के लक्ष्य से ही यह कार्य प्रारम्भ किया गया है।

४—विद्वानों से हमारा आग्रहपूर्वक निवेदन है कि वे प्रत्येक टीका एक बार अवश्य पढ़ें। उन्हें बहुत लाभ होगा। अपनी समीक्षा हमें अवश्य भेजें। यदि टीका प्रमाणिक लगे तो उसका प्रचार भी अवश्य करें। हमें जिनवाणी माता के प्रचार में उनकी सहायता की परम आवश्यकता है।

५—जिन विद्वानों की सेवा में पहली टीका भेजी जा चुकी है तथा यह भेजी जा रही है वे कृपया अपनी समालोचना जल्दी भेजें। हम हृदय से बहुत आभारी होंगे।

६—श्रीमोक्षशास्त्रजी की नय तथा श्रीप्रवचनसार आदि आगमकी नय और हैं। इस ग्रन्थ में केवल आध्यात्मिक नय हैं जो मात्र श्रीसमयसार जी में से निकाली गई हैं। हमारी नम्र प्रार्थना है कि उसी के आधार पर परीक्षा करें अन्यथा आप इस पुस्तक का मर्म न पा सकेंगे।

७—बहुत खास ही कार्य होने पर हमारे मकान पर पधारने का कष्ट करें, केवल मिलने जुलने के लिए हरगिज नहीं क्योंकि हमें आपकी अगले मास की सेवा के लिए टीका तैयार करनी होती है।

८—हमारा अगला प्रकाशन श्री समयसार परमागम होगा जिसमें मूल गाथा, संस्कृतछाया, हिन्दी हरिगीत, गाथार्थ भावार्थ, सार होगा। साथ में कलशचन्द्रिका टीका जिसमें (१) शीर्षक (२) मूलकलश (३) संस्कृत अन्वय (४) पदछेदसहित हिन्दी अन्वयार्थ (५) प० श्री

शेष समर्पण के पीछे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समर्पण

अध्यात्ममूर्ति पूज्य श्री कानजी स्वामी को

सुद्धस्स य सामण्णं भणियं सुद्धस्स दंसणं णाणं ।
सुद्धस्स य णिव्वाणं सो च्चिय सिद्धो णमो तस्स ॥२७४॥

गुरुस्तुति

संसार सागर तरने को जिनवाणी है नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मिले बिना ये नाव भी तारे नहीं;
दुर्लभ महा इस कालमें शुद्धात्मज्ञानी गुरु मिले;
मुझ पुण्यराशि फली अहो ! गुरु कहान तू नाविक मिला ।

जिसका इस पामर पर महान् महान् उपकार है, जो श्री समयसार के अनुभव द्वारा अपने निज कल्याण में रत हैं। एवं श्री समयसार के मर्म को स्पष्ट, सरल एवं सुन्दर प्रकार से प्रकाशित कर भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में ले जा रहे हैं। जिन की दिव्य वाणी के उत्कृष्ट प्रवाह द्वारा श्री समयसार के अभ्यास की रुचि जागृत हुई है, उन परम-उपकारी श्री समयसार मर्मज्ञ अध्यात्ममूर्ति पूज्य श्रीकानजी स्वामी के कर-कमलों में यह महान् टीका अत्यन्त भक्तिपूर्वक सादर समर्पण है।

गुरु आपकी सेवा न मुझ पामर से कुछ भी बन सके ।
टीका समर्पण मैं करूं भक्ति के पूरण भाव से ॥

दासानुदास
'सरना'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजमल्लकृत हिन्दी टीका वर्तमान भाषा में अक्षरशः परिवर्तित (६) बनारसीदासकृत हिन्दी कलश तथा उनका पं० रूपचन्द पांडेय-कृत हिन्दी अर्थ वर्तमान भाषा में (७) सार रूप से कुछ हमारा निवेदन। इतने ज्ञानियों का अनुभव आपको इस एक पुस्तक में मिलेगा। श्री पंचाध्यायी के छः भाग पूरे होते ही प्रकाशन प्रारम्भ होगा और इसी प्रकार मासिक भागों में निकलेगा। हमने टीका को सुन्दर से सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया है क्योंकि इस ग्रन्थ पर हमारे गुरुदेव, उनकी शिष्य मण्डली तथा हमारी अगाध श्रद्धा तथा भक्ति है।

९—टीकाओं के प्रेस प्रूफों का संशोधन सोनगढ़ भक्त पं० देवचन्द जी आर्षभक्ति से कर रहे हैं जिनके लिये हार्दिक धन्यवाद।

१०—पुस्तक को समझने की योग्यता रखने वाले जिन विद्वानों तथा गृहस्थों का आपको पता है, उनके पते भेजने का कष्ट करें तथा प्रत्येक गृहस्थ का खासकर विद्वानों का कर्तव्य है कि वे कम से कम दो स्थायी ग्राहक जरूर बनायें।

११—हम समयाभाव के कारण पुस्तकें वी० पी० से नहीं भेजते। अतः आप पुस्तक मंगवाते समय पहले मनीआर्डर भेजदें या पीछे जो मंगवा चुके हैं वे कीमत मनीआर्डर से भेजें। यदि स्थायी ग्राहक बनना है तो दस रुपया भेजें अन्यथा एक रुपया प्रति टीका भेजें। डाक खर्च माफ।

१२—कमी के लिए पत्रव्यवहार न करें। हम व्यापारी नहीं हैं किन्तु धर्म-प्रचार के उद्देश्य से कार्य कर रहे हैं। जिनमें पुस्तक समझने की योग्यता है और कीमत नहीं खर्चना चाहते वे भेंट स्वरूप अमूल्य भी ले सकते हैं।

हमारे स्थायी ग्राहक १-२-३-४ ला० जिनेश्वरदास ला० बारूमल ला. सुरेशचन्द तथा उनके भाई सहारनपुर ५-६-७ डा. धर्मचन्द, कु. आशा कु. चन्द्रकान्ता, खण्डवा, ८-९ बा. उग्रसेन वा ब गिरिलाल मेरठ, १० बा० उग्रसेन मुजफ्फरनगर (११) ब ज्ञानचन्द कोटा (१२) ला० तिलोकचन्द इन्दौर (१३) ला० छोटेलाल सोनगढ़ (१४) ला० कैलाशचन्द बुलन्दशहर आप भी अपना नाम स्थायी ग्राहकों में जल्दी लिखवादें फिर आपको टीका बिना देरी के मिलेगी। आपको ज्ञान की वृद्धि होगी, धर्मप्रचार होगा तथा आपका रुपया दान खातेमें जमा होगा। आम के आम और गुठलियों के दाम। अवश्य लाभ लें।

(केवल) मुमुक्षुओं का सेवक
सरना

५-११-१९५८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीसद्गुरुदेवाय नमः

ग्रन्थराज श्री पंचाध्यायी

अध्यात्मचन्द्रिका टीका सहित

तीसरा महा अधिकार

नय प्रमाण निक्षेप निरूपण

तथा

नय प्रमाण प्रयोग पद्धति

(५०३ से ७६८ तक)

इस महाधिकार में निम्नलिखित विषयों का स्पष्टीकरण किया गया है:—

(१)	नय का सामान्य निरूपण	श्लोक नं० ५०४ से ५१५ = १२
(२)	व्यवहारनय तथा उसके भेद प्रभेदों का निरूपण	५१६ से ५५१ = ३६
(३)	सम्यक्नय और मिथ्यानय परखने की कसौटी	५५२ से ५६५ = १४
(४)	नयाभासों का निरूपण	५६६ से ५८७ = २२
(५)	वास्तविक व्यवहारनयों का स्वरूप	५८८ से ५९६ = ९
(६)	निश्चय नय का निरूपण	५९७ से ६६३ = ६७
(७)	प्रमाण का स्वरूप	६६४ से ६९५ = ३२
(८)	प्रमाण के भेदों का निरूपण	६९६ से ७१९ = २४
(९)	प्रमाणाभास का निरूपण	७२० से ७३७ = १८
(१०)	निक्षेपों का वर्णन	७३८ से ७४५ = ८
(११)	नय प्रमाण को लगाने की पद्धति	७४६ से ७६८ = २३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिज्ञा

उक्तं सदिति यथा स्यादेकमनेकं सुसिद्धदृष्टान्तात् ।
अधुना तद्वाङ्मात्रं प्रमाणनयलक्षणं वक्ष्ये ॥५०३॥

अर्थ—सत् जिस प्रकार एक और जिस प्रकार अनेक है यह (४३४ से ५०२ तक) सुप्रसिद्ध दृष्टान्तों द्वारा कहा गया । अब उस सत् के उच्चारणमात्र (विकल्पात्मक) 'नय प्रमाण लक्षण को कहूंगा ।

भावार्थ—केवल गुरु शिष्य की प्रवृत्ति द्वारा समझाने के लिये अथवा स्वयं वस्तु को विचार करके समझने के लिये नय प्रमाण साधन है । अतः शब्दात्मक तथा विकल्पात्मक हैं । अनुभव में नय प्रमाण नहीं होते । अनुभव निर्विकल्प होता है ।

पहला अवान्तर अधिकार

नय का सामान्य निरूपण ५०४ से ५१५ तक

नय का लक्षण

इत्युक्तलक्षणेऽस्मिन् विरुद्धधर्मद्वयात्मके तत्त्वे ।
तत्राप्यन्यतरस्य स्यादिह धर्मस्य वाचकश्च नयः ॥५०४॥

अर्थ—२६१ से ५०२ तक कहा गया है लक्षण जिसका ऐसे इस विरुद्ध दो धर्म स्वरूप (अस्ति-नास्ति, तत्-अतत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक, इस प्रकार परस्पर विरुद्ध दो धर्म स्वरूप) तत्त्व में—उन विरुद्ध धर्मों में से किसी एक धर्म का वाचक नय है जैसे सत् एक है या यह कहना कि सत् अनेक है ।

भावार्थ—वस्तु सामान्यविशेषात्मक है और उस सारी को कहने वाला प्रमाण है । उसमें केवल सामान्य धर्म को कहने वाला अथवा केवल विशेष धर्म को कहने वाला नय है अर्थात् विवक्षित अंश का प्रतिपादक नय है ।

नय के औपचारिक भेद*

द्रव्यनयो भावनयः स्यादिति भेदाद् द्विधा च सोऽपि यथा ।
पौद्गलिकः किल शब्दो द्रव्यं भावश्च चिदिति जीवगुणः ॥५०५॥

* नय के वास्तविक भेद आगे ५१७ में कहेंगे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—द्रव्य नय और भाव नय इस प्रकार वह नय भी भेद से दो प्रकार है। पौद्गलिक शब्द द्रव्य नय है। चेतन रूप जीव का गुण (विकल्पात्मक ज्ञान) भाव नय है।

भावार्थ—जिस प्रकार श्रुत ज्ञान के स्वार्थ और परार्थ दो भेद हैं उसी प्रकार नय, श्रुत ज्ञान का अंश होने से उसके शब्द और भाव रूप दो भेद किये हैं। पदार्थ के एक अंश का प्रतिपादक वाक्य द्रव्य नय कहलाता है और पदार्थ के एक अंश को विषय करने वाला विकल्पात्मक ज्ञान भाव नय कहलाता है। उनमें भी इतनी विशेषता है कि पौद्गलिक शब्दों को उपचार से नय कहा है और भावात्मक वास्तविक नय हैं क्योंकि नय आत्मा की पर्याय में होते हैं। वे विकल्पात्मक श्रुत ज्ञान के अंश हैं।

भाव नय का लक्षण

यदि वा ज्ञानविकल्पो नयो विकल्पोऽस्ति सोऽप्यपरमार्थः।
न यतो ज्ञानं गुण इति शुद्धं ज्ञेयं च किल तद्योगात् ॥५०६॥

अर्थ—अथवा ज्ञान में विकल्प भाव नय है। वह विकल्प भी (राग रूप होने से) अपरमार्थ है (अर्थात् नय मूल वस्तु नहीं है) क्योंकि नय न तो शुद्ध ज्ञान गुण है और न ज्ञेय है किन्तु उस ज्ञेय के निमित्त से ज्ञान में जो विकल्प है वह नय है अर्थात् ज्ञेय में अटक कर (रुककर) होने वाले श्रुत ज्ञान के विकल्प को नय कहते हैं।

भावार्थ—जैसे किसी घट से अनभिज्ञ पुरुष को घट का ज्ञान कराना है तो घट के एक-एक अंग के स्वरूप का वर्णन जिन शब्दों में किया जायेगा वे शब्द और भाव-नय हैं। न तो ज्ञान नय है न घट नय है। केवल घट को समझने समझाने का साधन विकल्प (राग) नय है। अर्थात् ज्ञेय के आश्रय से होने वाले राग सहित श्रुत ज्ञान के एक अंश को नय कहते हैं।

ज्ञानं विकल्पो नय इति तत्रेयं प्रक्रियापि संयोज्या।
ज्ञानं ज्ञानं न नयो, नयोऽपि न ज्ञानमिह विकल्पत्वात् ॥५०७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—ज्ञान विकल्प नय है। वहां भी यह प्रक्रिया लगा लेनी चाहिये कि ज्ञान ज्ञान है नय नहीं। नय भी ज्ञान नहीं है क्योंकि वह विकल्प रूप है (ज्ञान आत्मा का त्रिकाली स्वभाव है और विकल्प एक समय का क्षणिक आगन्तुक भाव है। दोनों भिन्न-भिन्न हैं)।

उन्मज्जति नयपक्षो भवति विकल्पो विवक्षितो हि यदा ।
न विवक्षितो विकल्पः स्वयं निमज्जति तदा हि नयपक्षः ॥५०८॥

अर्थ—जब विकल्प विवक्षित होता है तब नय पक्ष प्रगट होता है और जब विकल्प विवक्षित नहीं होता तब नय पक्ष स्वयं डूब जाता है।

भावार्थ—जब समझने समझाने का काम होता है तो नय पक्ष खड़ा हो जाता है और ज्ञान होने पर जब वस्तु का अनुभव किया जाता है तो नय पक्ष नष्ट हो जाता है।

संदृष्टिः स्पष्टेयं स्यादुपचाराद्यथा घटज्ञानम् ।
ज्ञानं ज्ञानं न घटो, घटोऽपि न ज्ञानमस्ति स इति घटः ॥५०९॥

अर्थ—दृष्टान्त यह स्पष्ट है। जैसे घट को विषय करने वाले ज्ञान को उपचार से घट ज्ञान कहा जाता है (पर ऐसा कहने से कहीं ज्ञान, घट रूप या घट, ज्ञान रूप नहीं हो गया) ज्ञान ज्ञान रूप है घट रूप नहीं है। घट भी ज्ञान नहीं है वह तो घड़ा ही है।

भावार्थ—ज्ञान का स्वभाव जानना है। हरएक वस्तु उसका ज्ञेय पड़ती है फिर घट को विषय करने वाले ज्ञान को घट ज्ञान क्यों कह दिया जाता है? उत्तर-उपचार से। उपचार का कारण भी विकल्प है। यद्यपि घट से ज्ञान सर्वथा भिन्न है तथापि ज्ञान में घट-यह विकल्प अवश्य पड़ा है। इसलिये उस ज्ञान को घट ज्ञान कह दिया जाता है।

इदमत्र तु तात्पर्यं हेयः सर्वो नयो विकल्पात्मा ।
बलवानिव दुर्वारः प्रवर्तते किल तथापि बलात् ॥५१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—यहां यही तात्पर्य है कि विकल्पात्मक सब नय त्याज्य ही हैं। तो भी वह बलपूर्वक बलवान की तरह प्रवर्त होता है और उसको नष्ट करना कठिन है।

भावार्थ—समझने समझाने का और कोई साधन नहीं है अतः यह नय रूप विकल्प हेय होने पर भी लाचारी में प्रयोग करना ही पड़ता है। इसी को बलपूर्वक प्रवृत्ति कहते हैं। दुर्वार इसलिये है कि जीव सहसा नय विकल्पों का अभाव नहीं कर सकता। केवल आत्मज्ञानी आत्मानुभव से ही नयातीत दशा को प्राप्त करते हैं।

(आगे देखिये ६४५ से ६५३ तक)

अथ तद्यथा तथा सत् सन्मात्रं मन्यमान इह कश्चित्।
न विकल्पमतिक्रामति सदिति विकल्पस्य दुर्निवारत्वात् ॥५११॥

अर्थ—जितना भी नय है वह विकल्पात्मक है इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि यहां सत् को सत् मात्र मानता हुआ भी कोई विकल्प को उलंघन नहीं करता है क्योंकि सत् के विषय में 'सत्' इस विकल्प का निवारण करना कठिन है।

भावार्थ—कोई यह कहे कि चलो हम पदार्थ की भेद रूप श्रद्धा नहीं करते। हम तो अखण्ड अभेद सत् को श्रद्धा करेंगे, तो कहते हैं कि सत् को 'सत् मात्र' श्रद्धान करने में भी 'सत्' इतना विकल्प तो फिर भी है। इसलिये नय विकल्प तो फिर भी खड़ा है। वह बिना अनुभव दुर्निवार ही है। दूसरे सत् भी तो वस्तु का एक अंश (सामान्य अंश) है। जीव-सत्, सत्-पुद्गल सत् विशेष रूप दूसरा अंश भी तो चाहिये। सम्पूर्ण वस्तु शब्द का विषय नहीं है वह तो अनुभव का विषय है।

स्थूलं वा सूक्ष्मं वा बाह्यान्तर्जल्पमात्रवर्णमयम्।
ज्ञानं तन्मयमिति वा नयविकल्पो वाग्विलासत्वात् ॥५१२॥

अर्थ—इसी प्रकार स्थूल बाह्य विकल्प (स्पष्ट बोलना) और सूक्ष्म अन्तर्जल्प (मन ही मन में बोलना) जितना भी विकल्प है वह सब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्णमय है और वह नय रूप है क्योंकि वह वचन विन्यास रूप है। जितना भी वचनात्मक कथन है सब नयात्मक है तथा उन वचनों का जो बोध है—ज्ञान है वह भी नय रूप ही है क्योंकि वचनों के समान उसने भी वस्तु के विवक्षित अंश को ही विषय किया है और राग को लिये हुये है।

भावार्थ—वाचक तथा वाच्य बोध–दोनों ही नयात्मक हैं। सत् को समझने के लिये सूक्ष्म से सूक्ष्म तक जितना भी वचनाश्रित विकल्प भेद है। वह सब नय है।

अवलोक्य वस्तुधर्मं प्रतिनियतं प्रतिविशिष्टमेकैकम्।
संज्ञाकरणं यदि वा तद्वागुपचर्यते च नयः ॥५१३॥

अर्थ—अपनी अपनी विशेषता को लिये हुये प्रतिनियत एक-एक वस्तु के धर्म को देखकर जो उसका वैसा नाम रखना है अथवा उसका उच्चारणात्मक वचन है वह सब नय से उपचार किया जाता है।

भावार्थ—(१) अग्नि को छूकर देखा तो कह दिया 'अग्नि गरम है'। अग्नि से खाना पकाते देखा तो कह दिया 'अग्नि पाचक है'। अग्नि से प्रकाश होते देखा तो कह दिया 'अग्नि प्रकाशक' है। इत्यादि अग्नि अनन्त रूप है। यह जितना अग्नि का नाम रखना या कहना या विकल्प करना सब वचन विलास है और वह वचन विलास नय रूप से लोक में तथा आगम में उपचार किया जाता है (प्रसिद्ध है)। अग्नि तो जो है सो है वह निर्विकल्प है और अनुभव गम्य है। (२) इस प्रकार आत्मा को जानते हुये देखकर 'ज्ञानी' कहना, देखते हुये देखकर दृशी' कहना। रमण करते देखकर चारित्री कहना इत्यादिक-आत्मा का नाम रखना या कहना या विचारना सब नय विकल्प जाल है। हेय है। आत्मा तो जो है सो है। निर्विकल्प है। अनुभव गम्य है। पर उस अनुभव गम्य आत्मा का ज्ञान कराने का और कोई साधन नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ तद्यथा यथाग्नेरौष्ण्यं धर्मं समक्षतोऽपेक्ष्य ।
उष्णोऽग्निरिति वागिह तद्ज्ञानं वा नयोपचारः स्यात् ॥५१४॥

अर्थ—जैसे अग्नि का उष्ण धर्म सामने देखकर किसी ने कहा कि 'अग्नि उष्ण है' यह वचन नय रूप है और उस वचन का वाच्य रूप बोध भी नयात्मक है।

इह किल छिदानिदानं स्यादिह परशु स्वतन्त्र एव यथा ।
न तथा नयः स्वतन्त्रो, धर्मविशिष्टं करोति वस्तु बलात् ॥५१५॥

अन्वय—यथा इह किल परशु स्वतन्त्रः एव छिदानिदानं स्यात् तथा नयः स्वतन्त्रः (छिदानिदानं न स्यात् किन्तु सः नयः) वस्तु बलात् धर्मविशिष्टं करोति।

अर्थ—जैसे यहां जगत में कुलहाड़ा स्वतन्त्र ही भेद का कारण होता है। उस प्रकार नय स्वतन्त्र होकर वस्तु के भेद (टुकड़े करने) का कारण नहीं है किन्तु वह तो वस्तु को बलपूर्वक धर्म सहित करता है अर्थात् नय गुण गुणी का भेद (खंड) नहीं करता किन्तु अभेद करता है।

भावार्थ—वस्तु में अनन्त धर्म होने से तथा शब्द में युगपत् सब धर्मों का प्रतिपादन करने की शक्ति न होने से, वस्तुगत एक-एक विशेष २ धर्म की अपेक्षा करके कहने वाला वचन या विकल्परूप नय उस वस्तु को उस धर्म सहित निरूपण कर देता है। यही नय का कमाल है। वह एक-एक धर्म को वस्तु से भिन्न नहीं करता किन्तु वस्तु को उस धर्म से युक्त करता है। जैसे ऊपर के दृष्टान्त में अग्नि को उष्ण कहा था यह नय उष्णता को अग्नि से परशुवत् भिन्न नहीं करना किन्तु अग्नि उष्णतामय है इस प्रकार अग्नि को उष्णता से विशिष्ट करता है। सब नय इसी प्रकार वस्तु को अपने अपने धर्म से विशिष्ट करते हैं। अतः वस्तु अनन्तधर्मात्मक सिद्ध हो जाती है। फिर प्रमाण के अनन्तधर्मात्मक वस्तु का युगपत बोध हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५०३ से ५१५ तक का सार

हम ऊपर कह चुके हैं कि नय का कार्य केवल वस्तु को समझाना है। और समझना समझाना बिना भेद किये नहीं हो सकता। अतः वस्तु का अनुभवी आचार्य शिष्य को वस्तु पकड़ाने के लिये नयों द्वारा भेद प्रभेद करता चला जाता है पर आशय उसका अभेद को ही पकड़ाने का है। और शिष्य भी भेद प्रभेद करके पकड़ता है पर आशय शिष्य का भी अभेद को ही पकड़ने का है। तो कहते हैं कि नय यद्यपि शब्दों में वस्तु को खण्ड खण्ड कर देता है पर इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि वस्तु भी उस प्रकार खण्ड खण्ड हो गई जैसे परशु से लकड़ी खण्ड खण्ड हो जाती है किन्तु नय तो एक-एक धर्म को भेद करके वस्तु को अनन्त धर्मों से विशिष्ट करता है अर्थात् अनन्तधर्मात्मक एक वस्तु सिद्ध करता है। समझने समझाने के बाद यह सब नय जाल निरर्थक है। अतः श्रीसमयसार जी में इसी को व्यवहार या म्लेच्छ भाषा कहा है। म्लेच्छों में धर्म नहीं है उसी प्रकार नय जाल (व्यवहार) में धर्म नहीं है। आर्य (निश्चय) में धर्म है अर्थात् अखण्ड आत्मानुभव में धर्म है। धर्म नयातीत है। (आगे देखिये ६४५ से ६५३ तक)

नोट—यहां तक वचनात्मक (द्रव्यनय) और ज्ञानात्मक विकल्प (भाव नय) दोनों का निरूपण किया। इसमें इतना विवेक और रखने की आवश्यकता है कि शब्द को तो उपचार से ही नय कहते हैं। आत्मा में जो विकल्प है वही वास्तव में नय है। क्योंकि नय आत्मा की पर्याय है पुद्गल की नहीं और आत्मा में भी वह भाव नय अपरामार्थभूत है कोई वास्तविक वस्तु नहीं है। वह तो उन्मज्जत निमज्जत होने वाली चीज है। आगन्तुक भाव है। आस्रव तत्त्व है। अथवा विकल्पात्मक ज्ञान है। अनुभव में नय का उदय नहीं है।

नय का सामान्य कथन पूरा हुआ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरा अवान्तर अधिकार

व्यवहार नय तथा उसके भेद प्रभेदों का निरूपण
५१६ से ५५१ तक

इस अधिकार में निम्नलिखित विषयों का निरूपण किया गया है:—

(१)	नय के मूल भेदों का कथन	५१६ से ५२० = ५
(२)	व्यवहार नय का वर्णन	५२१ से ५२४ = ४
(३)	सद्भूत व्यवहारनय का वर्णन	५२५ से ५२८ = ४
(४)	असद्भूतव्यवहारनय का वर्णन	५२९ से ५३३ = ५
(५)	अनुपचरितसद्भूत व्यवहारनय का वर्णन	५३५ से ५३९ = ५
(६)	उपचरितसद्भूत व्यवहारनय का वर्णन	५४० से ५४५ = ६
(७)	अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय का वर्णन	५४६ से ५४८ = ३
(८)	उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय का वर्णन	५४९ से ५५१ = ३

नय के भूल भेदों का कथन ५१६ से ५२० तक

एकः सर्वोऽपि नयो भवति विकल्पाविशेषतोऽपि नयात् ।
अपि च द्विविधः स यथा स्वविषयभेदे विकल्पद्वैविध्यात् ॥५१६॥

अर्थ—विकल्प सामान्य की अपेक्षा सभी नय एक है क्योंकि जो भी नय होगा वह विकल्पात्मक ही होगा तथा अपने विषय में भेद होने से विकल्प दो प्रकार का होता है। अतः नय के भी दो भेद हो जाते हैं।

एको द्रव्यार्थिक इति पर्यायार्थिक इति द्वितीयः स्यात् ।
सर्वेषां च नयानां मूलमिवेदं नयद्वयं यावत् ॥५१७॥

अर्थ—एक द्रव्यार्थिक नय और दूसरा पर्यायार्थिक नय है। ये दो नय सब नयों के मूलश्रोत हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यार्थिक नय का निरुक्ति-अर्थ

द्रव्यं सन्मुख्यतया केवलमर्थः प्रयोजनं यस्य ।
भवति द्रव्यार्थिक इति नयः स्वधात्वर्थसंज्ञकश्चैकः ॥५१८॥

अर्थ—द्रव्य अर्थात् सत् केवल वह ही मुख्यता से जिसका अर्थ अर्थात् प्रयोजन (विषय) हो वह द्रव्यार्थिक नय है। यह अपनी धातु के अर्थ के अनुसार यथार्थ नाम धारक है और यह एक ही होती है। (इसके भेद नहीं होते)।

भावार्थ—भेद (पर्याय) को गौण रखकर मुख्यता से जहां अखण्ड द्रव्य कहा जाता हैं अथवा उसका ज्ञान किया जाता है वह द्रव्यार्थिक नय कहलाता है और वह एक है क्योंकि उसमें भेद विवक्षा नहीं है।

पर्यायार्थिक नय का निरुक्ति-अर्थ

अंशाः पर्याया इति तन्मध्ये यो विवक्षितोंऽशः सः ।
अर्थो यस्येति मतः पर्यायार्थिकनयस्त्वनेकश्च ॥५१९॥

अर्थ—अंशों का नाम ही पर्यायें है। उन अंशों के बीच में से जो भी विवक्षित अंश है, वह अंश है अर्थ अर्थात् प्रयोजन (विषय) जिसका वह पर्यायार्थिक नय माना गया है। ऐसे पर्यायार्थिक नय अनेक हैं।

भावार्थ—ग्रन्थकार पहले श्लोक नं० २६ में कह आये हैं "कि जो द्रव्य में अंश कल्पना है वह पर्यायों का धर्म है।" इसलिये जो अखण्ड द्रव्य के किसी भी एक अंश का निरूपण करता है वह पर्यायार्थिक नय है। अंश अनेक हैं इसलिये उनको विषय करने वाला ज्ञान भी अनेक है तथा उनको प्रतिपादन करने वाला वाक्य भी अनेक है। अतः ये नय अनेक हैं।

अधुना रूपदर्शनं संदृष्टिपुरस्सरं द्वयोर्वक्ष्ये ।
श्रुतपूर्वमिव सर्वं भवति च यद्वानुभूतपूर्वं तत् ॥५२०॥

अर्थ—अब उन दोनों के स्वरूप कथन को दृष्टान्तपूर्वक कहूँगा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि दृष्टान्त पूर्वक कहने से सब विषय श्रोताओं को पहले सुने हुये के समान अथवा अनुभव किये हुये के समान हो जाता है।

५१६ से ५२० तक का सार

जितना भी विकल्पात्मक ज्ञान है उसे नय कहते हैं यह पहले ही बता आये हैं। अतः विकल्प सामान्य की अपेक्षा नय को एक बतलाया है। किन्तु कोई विकल्प सामान्यग्राही (अखण्डग्राही) होता है और कोई विशेषग्राही (खण्डग्राही) होता है। इस प्रकार विकल्प के दो भागों में बट जाने के कारण नय के भी दो भेद हो जाते हैं। द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय। इनमें से जो नय द्रव्य अर्थात् सामान्य (अभेद) को विषय करता है वह द्रव्यार्थिक नय है और जो नय पर्याय (भेद) को विषय करता है वह पर्यायार्थिक नय है। सामान्य एक है अतः द्रव्यार्थिक नय एक है और पर्यायें (अंश-भेद) अनेक होते है अतः पर्यायार्थिक नय अनेक हैं।

नोट—नय के मूल दो भेदों का कथन पूरा हुआ अब उनमें से पहले व्यवहार नय का वर्णन करते हैं।

व्यवहार नय का वर्णन ५२१ से ५२४ तक

नोट—द्रव्यार्थिक (निश्चय) और पर्यायार्थिक (व्यवहार) नयों में से पहले व्यवहार नय के निरूपण करने का प्रयोजन यह है कि व्यवहार नय प्रतिषेध्य है और निश्चय नय प्रतिषेधक है। प्रतिषेध्य का निरूपण किए बिना प्रतिषेध किसका करें।

पर्यायार्थिकनय इति यदि वा व्यवहार एव नामेति।
एकार्थो यस्मादिह सर्वोऽप्युपचारमात्रः स्यात् ॥५२१॥

अर्थ—पर्यायार्थिक नय अथवा इसका व्यवहार नय भी नाम है। इनका एक ही अर्थ है क्योंकि इस नय के विषय में जितना भी व्यवहार है सब उपचार मात्र है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—वस्तु वास्तव में अखण्ड है जो निश्चय का विषय है। अतः निश्चय नय सत्यार्थ है और भेद तो केवल समझाने के लिये काल्पनिक किया जाता है। अतः इस नय का विषय अभूतार्थ होने से इसको पर्यायार्थिक, व्यवहार, उपचार, अभूतार्थ, असत्यार्थ आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है।

व्यवहार नय का लक्षण

व्यवहरणं व्यवहारः स्यादिति शब्दार्थतो न परमार्थः।
स यथा गुणगुणिनोरिह सदभेदे भेदकरणं स्यात् ॥५२२॥

अर्थ—किसी वस्तु में विधि पूर्वक भेद करने का नाम व्यवहार है। यह उसका शब्द (निरुक्ति) के आधार से अर्थ है किन्तु परमार्थ अर्थ नहीं है। परमार्थ अर्थ इस कारण नहीं है कि सत् में अभेद होने पर भी 'यह गुण है–यह गुणी है' इस प्रकार गुण गुणी में भेद करता है। जैसे जीव गुणी, ज्ञान गुण।

व्यवहार नय की प्रवृत्ति में कारण

साधारणगुण इति वा यदि वाऽसाधारणः सतस्यस्य।
भवति विवक्ष्यो हि यदा व्यवहारनयस्तदा श्रेयान् ॥५२३॥

अर्थ—जब उस सत् का साधारण गुण या असाधारण गुण कोई भी विवक्षित होता हैं तब व्यवहार नय प्रवृत्त होता है।

भावार्थ—अखण्ड द्रव्य अनन्त गुणों का पिण्ड है। द्रव्य का वाचक जगत् में कोई शब्द ही नहीं है। जितने शब्द है वे उसके एक २ गुण के वाचक हैं। अतः अखण्ड वस्तु में किसी एक गुण का भेद करके उस भेद द्वारा यह नय वस्तु को पकड़ा देता है। जैसे जीव को चाहे सामान्य गुण 'द्रव्य' (द्रव्यत्व गुण का वाचक) कह कर पकड़ाये या सत् (अस्तित्व गुण का वाचक) कह कर पकड़ाये या ज्ञान या दर्शन आदि कोई विशेष गुण कह कर पकड़ाये। चाहे जिस गुण भेद से वस्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पकड़ाये जैसे "परिणमन करे सो जीव-द्रव्यत्व गुण से, जाने सो जीव-ज्ञान गुण से"। वस्तु पकड़ाने के लिये इस नय द्वारा सामान्य या विशेष कोई गुण भी विवक्षित किया जा सकता है। उससे ही वस्तु पकड़ ली जाती है। वस्तु का पकड़ना ही इस नय की सार्थकता है।

अगली भूमिका—यहां पर शंका की जा सकती है कि जब व्यवहार नय वस्तु में भेद सिद्ध करता है तथा उसके यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक नहीं है तो फिर उसका विवेचन ही क्यों किया जाता है अर्थात् जब उससे किसी उपयोगी फल की सिद्धि ही नहीं होती तो उस का मानना ही निष्फल है ? इस शंका के उत्तर में व्यवहार नय का फल नीचे के श्लोक में कहा जाता है:—

व्यवहार नय के जानने का फल

फलमास्तिक्यमतिः स्यादनन्तधर्मैकधर्मिणस्तस्य ।
गुणसद्भावे नियमाद् द्रव्यास्तित्वस्य सुप्रतीतत्वात् ॥५२४॥

अर्थ—इस व्यवहार नय का फल यह है कि उस अनन्तधर्मात्मक एक धर्मी में आस्तिक्य बुद्धि हो जाती है क्योंकि गुणों के सद्भाव में नियम से द्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होता है। और द्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होने पर फिर उसका सद्भाव स्वयं सिद्ध स्वतः अनुभव (प्रतीति) में आने लगता है।

भावार्थ—व्यवहार नय के मानने का फल यह है कि वस्तु में अनन्त धर्म होने पर भी वह अखण्ड वस्तु है ऐसी प्रतीति हो जाती है। अर्थात् गुण गुणी अभेद होने से गुणों को जानने से गुणी की प्रतीति जीव को आवे तो इस व्यवहार नय का यथार्थ फल आया कहवाय। व्यवहार (भेद) के आश्रय का फल विकल्प-राग द्वेष संसार हैं इसलिये भेद का आश्रय नहीं करना चाहिये अर्थात् इस नय द्वारा कहे हुये गुणों के भेद में नहीं रुकना चाहिये। अभेद द्रव्य की प्रतीति करनी यही इस नय के ज्ञान का फल है। यदि यह फल न आये, तो इस नय का ज्ञान यथार्थ नहीं कहा जाता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५२१ से ५२४ तक का सार

व्यवहार नय के बिना पदार्थ विज्ञान नहीं होता। दृष्टान्त के लिये जीव द्रव्य को ही ले लीजिये। व्यवहार नय से जीव का कभी ज्ञान गुण विवक्षित किया जाता है, कभी दर्शन गुण, कभी चारित्र, कभी सुख, कभी वीर्य, कभी सम्यक्त्व, कभी अस्तितत्व, कभी वस्तुत्व, कभी द्रव्यत्व इत्यादि सब गुणों को क्रमशः विवक्षित करने से यह बात ध्यान में आ जाती है कि जीव द्रव्य अनन्त गुणों का पुंज है। साथ ही इस बात का भी परिज्ञान (व्यवहार नय से) हो जाता है कि ज्ञान, दर्शन, सुख, चरित्र, सम्यक्त्व ये जीव के विशेष गुण हैं क्योंकि ये गुण जीव के सिवाय अन्य किसी द्रव्य में नहीं पाये जाते हैं और अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व आदि सामान्य गुण हैं क्योंकि ये गुण जीव द्रव्य के सिवाय अन्य सभी द्रव्यों में भी पाये जाते हैं तथा रूप, रस, गंध, स्पर्श ये पुद्गल के सिवाय अन्य किसी द्रव्य में नहीं पाये जाते हैं इसलिये वे पुद्गल के विशेष गुण हैं। इस प्रकार वस्तु में अनन्त गुणों के परिज्ञान के साथ ही उसके सामान्य विशेष गुणों का परिज्ञान भी व्यवहार नय से होता है। गुण गुणी और सामान्य विशेष गुणों का परिज्ञान होने पर ही पदार्थ में अस्तित्व भाव होता है। इसलिये बिना व्यवहार नय के माने काम नहीं चल सकता क्योंकि पदार्थ का स्वरूप बिना समझाये आ नहीं सकता और जो कुछ समझाया जायेगा वह अंश रूप से समझाया जायेगा—इसी को पदार्थ में भेद बुद्धि कहते हैं। अभिन्न अखण्ड पदार्थ में भेद बुद्धि को उपचरित कहा गया है। इस प्रकार यह व्यवहार नय पदार्थ का बोध कराने वाली होने के कारण स्थापन करने योग्य है पर "अनुसरण करने योग्य नहीं है क्योंकि यह राग द्वेष संसार की उत्पादक है। केवल काम निकालने की चीज है अटकने की चीज नहीं है। श्री समयसार जी गाथा १० की टीका में कहा है—"इस प्रकार जगत तो म्लेच्छ के स्थान पर होने से और व्यवहार नय भी म्लेच्छ भाषा के स्थान पर होने से परमार्थ का प्रतिपादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(कहने वाला) है इसलिये व्यवहार नय स्थापित करने योग्य है, किन्तु ब्राह्मण को म्लेच्छ नहीं हो जाना चाहिये-इस वचन से वह (व्यवहार नय) अनुसरण करने योग्य नहीं है।" अर्थात् स्वयं म्लेच्छ बनने योग्य नहीं है, इस बात को बराबर समझ लेना चाहिये अन्यथा सब शास्त्राभ्यास निरर्थक है। साध्य की सिद्धि न होगी। इसी बात को श्री पुरुषार्थसिद्धयुपाय नं० ६ में इन शब्दों में कहा है कि "अज्ञानी को ज्ञान कराने के लिये मुनीश्वर अभूतार्थ को (व्यवहार नय को-भेद को) उपदेश करते हैं। जो केवल व्यवहार को ही जानता है। उसके लिये उपदेश ही नहीं है क्योंकि आचार्य महाराज तो अभेद को पकड़ाने के लिये भेद का उपदेश दे रहे थे भेद में अटकने के लिये नहीं। इस भूल से सावधान रहना चाहिये।

नोट—मूलभूत व्यवहार नय का वर्णन समाप्त हुआ। अब उसके भेदों का वर्णन करते हैं।

सद्भूत व्यवहार नय का वर्णन

(५२५ से ५२८ तक)

सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण

व्यवहारनयो द्वेधा सद्भूतस्त्वथ भवेदसद्भूतः।
सद्भूतस्तद्गुण इति व्यवहारस्तत्प्रवृत्तिमात्रत्वात् ॥५२५॥

अर्थ—व्यवहार नय दो प्रकार है (१) सद्भूत और (२) असद्-भूत। जिस वस्तु में जो गुण है उसकी सद्भूत संज्ञा है। और उन गुणों की भेद रूप प्रवृत्तिमात्र का नाम व्यवहार है अर्थात् विवक्षित किसी द्रव्य के गुणों को उसी द्रव्य में भेद रूप से प्रवृत्ति कराने वाले नय का नाम सद्भूतव्यवहार नय है।

भावार्थ—किसी द्रव्य के गुण उसी द्रव्य में विवक्षित करने का नाम ही सद्भूतव्यवहार नय है। यह नय उसी वस्तु के गुणों का विवेचन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है इसलिये यथार्थ है। इस नय में अयथार्थपना केवल इतना है कि यह अखण्ड वस्तु में गुण गुणी का भेद करता है। प्रवृत्ति के पीछे 'मात्र' शब्द इसलिये है कि–"इस नय के कथन में गुण के भेद की प्रवृत्ति है पर उसका प्रयोजन भेद समझाने का नहीं है परन्तु गुण गुणी के अभेदरूप समझाने का है।"

सद्भूत व्यवहारनय की प्रवृत्ति में कारण

अत्र निदानं च यथा सदसाधारणगुणो विवक्ष्यः स्यात्।
अविवक्षितोऽथवापि च सत्साधारणगुणो न चान्यतरात् ॥५२६॥

अर्थ—इस नय की प्रवृत्ति में कारण यह है कि सत् का असाधारण गुण विवक्षित होता है और सत् का साधारण गुण अविवक्षित होता है। दूसरे प्रकार नहीं अर्थात् इस नय की प्रवृत्ति में साधारण गुण विवक्षित हो और असाधारण अविवक्षित हो ऐसा कभी नहीं होता। (श्लोक अस्ति नास्ति से लिखा है)।

भावार्थ—सद्भूत व्यवहार नय का कारण उस द्रव्य के असाधारण गुण जानने का है क्योंकि असाधारण गुणों द्वारा वह द्रव्य दूसरे द्रव्यों से भिन्न पहचाना जा सकता है। वह द्रव्य दूसरे द्रव्यों से जुदा है यह सिद्ध होते दूसरे द्रव्यों की उसमें 'नास्ति' है ऐसी निषेध बुद्धि उत्पन्न होती है। साधारण गुण से उस द्रव्य की सिद्धि तो हो जाय पर उस द्रव्य को दूसरे द्रव्यों से भिन्न नहीं जाना जा सकता। इसलिये साधारण गुण की विवक्षा होवे तो उस समय उसको सामान्यपने व्यवहार नय तो कह सकते हैं पर सद्भूतव्यवहार नय नहीं कह सकते।

सद्भूत व्यवहार नय के जानने का फल ५२७, ५२८

अस्यावगमे फलमिति तदितरवस्तुनि निषेधबुद्धिः स्यात्।
इतरविभिन्नो नय इति भेदाभिव्यञ्जको न नयः ॥५२७॥

अर्थ—इस नय का फल है कि इससे विवक्षित वस्तु के सिवाय अन्य वस्तु में यह वह नहीं है' इस प्रकार निषेध बुद्धि हो जाती है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि विवक्षित एक वस्तु को दूसरी वस्तुओं से भिन्न प्रगट करने वाला यह नय है किन्तु एक ही पदार्थ में भेद को प्रगट करने वाला यह नय नहीं है।

भावार्थ—सद्भूतव्यवहारनय वस्तु के विशेष गुणों का विवेचन करता है। इस नय के ज्ञान द्वारा वस्तु अपने विशेष गुणों द्वारा दूसरी वस्तुओं से भिन्न ही प्रतीत होने लगती है। जैसे कि जीव का ज्ञान गुण इस नय द्वारा विवक्षित होता है। वह जीव को दूसरे पुद्गलादि द्रव्यों से भिन्न सिद्ध करता है परन्तु यह नहीं कि जीव को ही अपने गुणों से भिन्न सिद्ध करता हो अथवा जीव और ज्ञान में भेद करता हो (देखिये पूर्व श्लोक ५१५)।

अस्तमितसर्वसङ्करदोषं क्षतसर्वशून्यदोषं वा।
अणुरिव वस्तुसमस्तं ज्ञानं भवतीत्यनन्यशरणमिदम् ॥५२८॥

अर्थ—सद्भूतव्यवहारनय से वस्तु का यथार्थ परिज्ञान होने पर वह सब प्रकार के संकर दोषों से रहित—सब से जुदी, सब प्रकार के शून्यता—अभाव आदि दोषों से रहित, समस्त ही वस्तु विना दूसरे की अपेक्षा किए हुये एक परमाणु के समान स्व से अखण्ड तथा पर से भिन्न ज्ञात होने लगती है। ऐसी अवस्था में वह उसका शरण वही दीखती है।

भावार्थ—इस नय द्वारा जब वस्तु उसके विशेष गुणों से दूसरों से भिन्न सिद्ध हो जाती है, फिर उसमें संकर दोष नहीं आ सकता है तथा गुणों का परिज्ञान होने पर उसमें शून्यता अर्थात् अभाव आदि दोष भी नहीं आ सकते हैं क्योंकि उसके गुणों की सत्ता और उनकी नित्यता का परिज्ञान उक्त दोनों दोषों का विरोधी है तथा जब वस्तु के सामान्य भी गुण उसमें ही दीखते हैं उससे बाहर नहीं दीखते तब वस्तु परमाणु के समान उसके गुणों से अखण्ड अभिन्न और पर से सर्वथा भिन्न प्रतीत होती है। इतने बोध होने पर ही वस्तु अनन्यशरण (अपनी शरण आप-कोई वस्तु कोई वस्तु की शरण नहीं) प्रतीत होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असद्भूत व्यवहार नय का वर्णन (५२९ से ५३३ तक)

असद्भूतव्यवहारनय का लक्षण

अपि चासद्भूतादिव्यवहारान्तो नयश्च भवति यथा।
अन्यद्रव्यस्य गुणाः संयोज्यन्ते बलात्तदन्यत्र ॥५२९॥

अर्थ—असद्भूत है आदि में जिसके और व्यवहार है अन्त में जिसके ऐसा ये असद्भूतव्यवहार नय है। इस नय द्वारा अन्य द्रव्य के गुण बलपूर्वक (कारणवश-विभाव परिणमन के कारण) उससे अन्य द्रव्य के कहे जाते हैं जैसे पुद्गल का क्रोध, जीव में क्रोधरूप विभाव परिणमन होने के कारण, जीव का कहना।

भावार्थ—इस नय द्वारा अन्य द्रव्य के गुण अन्य द्रव्य के कहे जाते हैं क्योंकि वे गुण वास्तविक रूप से उसमें नहीं है इसलिये असद्भूत किन्तु वे भाव उसमें प्रवर्तते हैं पर्याय में पाये जाते हैं इसलिये व्यवहार। जैसे राग वास्तव में पुद्गल द्रव्य का गुण है उसे आत्मा का गुण कहना ये असद्भूतव्यवहार नय है। इस नय से राग को आत्मा का कहा जाता है। राग आत्मा का त्रिकाली गुण नहीं है इसलिये तो असद्भूत किन्तु वैभाविक शक्ति के कारण आत्मा की पर्याय में राग पाया जाता है इसलिये व्यवहार। इस प्रकार असद्भूत व्यवहारनय है।

असद्भूतव्यवहारनय का उदाहरण

स यथा वर्णादिमतो मूर्तद्रव्यस्य कर्म किल मूर्तम्।
तत्संयोगत्वादिह मूर्त्ताः क्रोधादयोऽपि जीवभवाः ॥५३०॥

अर्थ—वह इस प्रकारः—वर्णादिमान मूर्त द्रव्य का बना हुआ कर्म निश्चय से एक मूर्त पदार्थ है। उसका संयोग (निमित्त मात्र उदय) होने से ये मूर्तिक क्रोधादिक जीव में उत्पन्न होते हैं। फिर उन क्रोधादिकों को जीव के गुण कहना असद्भूतव्यवहार है।

भावार्थ—मोहनीय कार्मण वर्गणा में जो क्रोधादि शक्ति है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह शक्ति वास्तव में उस पुद्गल कर्म का गुण है और वह शक्ति निश्चय से मूर्त है। उसके उदय रूप निमित्त मात्र की सन्निधि होने पर जीव अपनी वैभाविक शक्ति के कारण भाव क्रोधादि रूप पर्याय में स्वयं परिणमन करता है। बस इस कारण के कारण जीव में उत्पन्न होने वाले उन भाव क्रोधादिकों को जीव के कहना ये असद्भूत व्यवहार नय है। इस प्रकार एक द्रव्य के गुण दूसरे द्रव्य में संयोजित किये जाते हैं—आरोपित किये जाते हैं—कहे जाते हैं। क्या इसी नय से जीव को वर्णमान (गोरा-काला) भी कह सकते हैं ? नहीं। क्रोधी जीव को कहने का तो उसका वैभाविक परिणमन कारण है पर वर्ण तो दूसरे धर्मी का परिणमन (परिणाम) है। उसको जीव का नहीं कह सकते क्योंकि उसका कोई कारण नहीं है। केवल संयोग या निमित्त या बंध होने से एक धर्मी का धर्म दूसरे धर्मी का संयोजित नहीं किया जाता किन्तु दूसरे द्रव्य का निमित्त मात्र होने पर मूल द्रव्य में यदि विभाव परिणमन हो तो उस निमित्त का धर्म उपादान का कहा जाता है क्योंकि नय एक धर्मी के एक २ धर्म रूप अंश का नाम है। वह अंश उसी द्रव्य के चतुष्टय में होना चाहिए न कि दूसरे धर्मी के चतुष्टय में। यह इस नय में खास विवेक रखने की बात है अन्यथा नयाभास हो जायेगा। शंका-पर आगम तथा लोकव्यवहार में तो वर्णादिमान जीव कहा जाता है। जीव ने कर्म बांधे, कर्म ने जीव को इष्ट अनिष्ट सामग्री दी, जीव ने स्त्री को भोगा। क्या वह कथन इस असद्भूतव्यवहार नय से ठीक नहीं है। समाधान-नहीं। कदापि नहीं। यद्यपि ऐसा कहने की आगम तथा लोक व्यवहार की रूढ़ि है। वह उपचरित असद्भूत दृष्टि से कह देते हैं पर वह वास्तव में मिथ्या है। नयाभास है। ज्ञानी ऐसे कथनों से डांवाडोल नहीं होते। वे समझ लेते हैं कि यह मात्र निमित्त के कथन हैं। वास्तव में मिथ्या हैं। नयाभास हैं क्योंकि दोनों धर्मी भिन्न भिन्न हैं। विशेष स्पष्टीकरण के लिए आगे देखिये न० ५५२ से ५८७ तक। सार यही है कि मूल द्रव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में केवल वैभाविक परिणमन के कारण ही अन्य द्रव्य के गुण अन्य द्रव्य में संयोजित करना असद्भूत व्यवहार नय है अन्यथा नहीं। इसी को अब अगले श्लोक में स्पष्ट करते हैं।

असद्भूतव्यवहार नय की प्रवृत्ति में कारण

कारणमन्तर्लीना द्रव्यस्य विभावभावशक्तिः स्यात्।
सा भवति सहजसिद्धा केवलमिह जीवपुद्गलयोः ॥५३१॥

अर्थ—असद्भूत व्यवहार नय की प्रवृत्ति क्यों होती है? इसका कारण द्रव्य में रहने वाली (अन्तर्लीन-तादात्मरूप) वैभाविक शक्ति है। उसका नाम वैभाविकी है पर वह है स्वाभाविकी (स्वतः सिद्ध) क्योंकि वह केवल जीव और पुद्गल में स्वतः सिद्ध है।

भावार्थ—जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों में एक वैभाविक नामा गुण हैं। यह उक्त दोनों द्रव्यों का स्वाभाविक गुण है। उस गुण का पर (कर्म) के निमित्त की सन्निधि में वैभाविक परिणमन होता है। बिना पर निमित्त के उसका स्वाभाविक परिणमन होता है। उसी वैभाविक शक्ति के विभाव परिणमन से असद्भूत व्यवहार नय के विषय-भूत जीव के क्रोधादिक भाव बनते हैं (इस शक्ति का विशद विवेचन दूसरे अध्याय में ५२ में १६२ तक किया गया है) वैभाविक शक्ति केवल जीव और पुद्गल में होने के कारण ये नय इन्हीं दो द्रव्यों पर लागू होगी। शेष चार द्रव्यों पर नहीं।

असद्भूतव्यवहारनय के जानने का फल

फलमागन्तुकभावादुपाधिमात्रं विहाय यावदिह।
शेषस्तच्छुद्धगुणः स्यादिति मत्त्वा सुदृष्टिरिह कश्चित् ॥५३२॥

अर्थ—आगन्तुक (आगमनशील-महमान) भाव होने के कारण क्रोधादिक उपाधिमात्र भाव हैं। उसको छोड़कर जो कुछ शेष बचता है वह जीव का शुद्ध गुण है। ऐसा मानकर (श्रद्धा करके-प्रतीति करके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां कोई जीव सम्यग्दृष्टि हो जाता है। यह इस नय के जानने का फल है।

भावार्थ—इस असद्भूत व्यवहार नय का प्रयोजन यह है कि रागादिक भाव को जीव का कहा है वह असद्भूत व्यवहार से है पर निश्चय से नहीं। इससे कोई भव्यात्मा उपाधि मात्र अंश को छोड़कर निश्चय तत्त्व को ग्रहण करने का इच्छुक बन कर सम्यग्दृष्टि हो सकता है कारण कि सब नयों में निश्चय नय ही उपादेय है पर बाकी का कोई नय नहीं। बाकी के नय तो मात्र परिस्थितिवश प्रतिपाद्य विषय का निरूपण मात्र करते हैं। इसलिये एक निश्चय नय ही कल्याणकारी है। यद्यपि इस असद्भूत व्यवहार नय का व्यवहार—व्यवहार है परन्तु वह उपादेय नहीं है। ऐसा समझकर इस नय के विषय को समझ लेने के बाद निश्चय नय के विषयभूत निश्चय तत्त्व को निरूपाधि रूप जान कर उसको अंगीकार करके कोई भव्यात्मा सम्यग्दृष्टि हो सकता है। यही इस नय के दिखलाने का मुख्य प्रयोजन है।

असद्भूतव्यवहार नय का दृष्टांत

अत्रापि च संदृष्टिः परगुणयोगाच्च पाण्डुरः कनकः।
हित्वा परगुणयोगं स एव शुद्धोऽनुभूयते कैश्चित् ॥७३३॥

अर्थ—इसमें दृष्टांत भी है। जैसे सोना दूसरे पदार्थ के गुणों के सम्बन्ध से कुछ सफेदी को लिये हुये पीला हो जाता है तब असद्भूत व्यवहार नय से सोना सफेद कहा जाता है पर पर गुण के सम्बन्ध को छोड़कर वही सोना (उसी समय मिली हुई अवस्था में भी) किन्हीं के द्वारा शुद्ध अनुभव किया जाता है 'उसी प्रकार' द्रव्य कर्म के क्रोधादिक मूर्तिक गुणों के सम्बन्ध से 'आत्मा क्रोधी इत्यादि' असद्भूत व्यवहार नय से कहा जाता है पर वही आत्मा उसी समय उसी राग सहित मिली हुई अवस्था में पर गुण के सम्बन्ध को छोड़कर किन्हीं निकट भव्यों के द्वारा शुद्ध अनुभव किया जाता है। इसका नाम सम्यग्दर्शन है। इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार इस नय के द्वारा कोई सम्यग्दृष्टि हो सकता है। दृष्टांत में ग्रंथकार ने परसंयोग नहीं लिखा किन्तु परगुणसंयोग लिखा है। अर्थात् चांदी से उनका भाव नहीं है किन्तु चांदी का गुण जो सफेद और वह सफेदी जो सोने में झलकने लगती है उसको सोने का वैभाविक परिणमन बनाकर दृष्टांत बनाया है। उसी प्रकार जीव में कर्म संयोग नहीं किन्तु कर्मगुणसंयोग=कर्म का गुण जो क्रोधादि भाव उसका जीव में संयोग होने पर–उस से रहित जीव को शुद्ध अनुभव करना क्योंकि असद्भूत व्यवहार में ग्रंथकार दूसरे धर्मी को नहीं लेता किन्तु उसके निमित्त से अपने विभाव को लेता है। दूसरे धर्मी को लेना तो नयाभास है। यह दृष्टांत और दार्ष्टान्त में बराबर ध्यान रहे।

नोट—व्यवहारनय के मूल भेदों का वर्णन समाप्त हुआ। अब प्रभेदों का अर्थात् भेदों के भेदों का वर्णन करते हैं—

सद्भूतव्यवहारोऽनुपचरितोऽस्ति च तथोपचरितश्च।
अपि चासद्भूतः सोऽनुपचरितोऽस्ति च तथोपचरितश्च ॥५३४॥

अर्थ—सद्भूतव्यवहार नय अनुपचरित भी होता है और उपचरित भी होता है तथा वह असद्भूत व्यवहार नय भी अनुपचरित और उपचरित होता है।

अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय का वर्णन ५३५ से ५३९

अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय का लक्षण

स्यादादिमो यथान्तर्लीना या शक्तिरस्ति यस्य सतः।
तत्तत्सामान्यतया निरूप्यते चेद्विशेषनिरपेक्षम् ॥५३५॥

अर्थ—जिस पदार्थ के भीतर जो शक्ति है वह उसकी यदि विशेष (पर्याय) निरपेक्ष सामान्य (गुण) रूप से निरूपण की जाती है तो पहली अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय है।

भावार्थ—द्रव्य की निजशक्ति पर से उपचरित नहीं की जाती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्तु स्व से उपचरित की जाती है जैसे ज्ञान ज्ञेय का नहीं किन्तु ज्ञानी (आत्मा) का कहना यह अनुपचरित, द्रव्य की वास्तविक शक्ति इसलिये सद्भूत और अभेद में भेद करके प्रवृत्ति करना व्यवहार। इस प्रकार अनुपचरितसद्भूत व्यवहार है।

अनुपचरितसद्भूत व्यवहार नय का उदाहरण ५३६-५३७

इदमत्रोदाहरणं ज्ञानं जीवोपजीवि जीवगुणः ।
ज्ञेयालम्बनकाले न तथा ज्ञेयोपजीवि स्यात् ॥५३६॥

अर्थ—यह उसका उदाहरण है। ज्ञान—जीव से ही जिसका जीवन है ऐसा जीव का अनुजीवी गुण है। वह ज्ञेय के अवलम्बन काल में भी (अर्थात् पर्याय में ज्ञेय को जानते समय ज्ञेयाकार होने पर भी) ज्ञेयोपजीवी (ज्ञेय के आधार से जीने वाला अथवा ज्ञेय का ही अनुजीवी गुण) नहीं हो जाता अर्थात् किसी पदार्थ को विषय करते समय ज्ञान सदा जीव का अनुजीवी गुण रहेगा यह अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय का उदाहरण है।

भावार्थ—यद्यपि ज्ञान, जिस समय जिस विषय को विषय करता है उस समय उसको वही कहते हैं जैसे घट को विषय करने से ज्ञान—घटज्ञान कहलाता है तो भी अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय की दृष्टि से यह कथन बराबर नहीं है। इसलिये ज्ञान को ज्ञेयोपजीवी न कह कर केवल आत्मोपजीवी ही कहना अर्थात् ज्ञान को घट ज्ञान न कहकर मात्र ज्ञान कहना ये इस नय का विषय है। ये ज्ञान ज्ञान को हर समय गुण रूप से-सामान्य रूप से देखती है। विशेष रूप से नहीं। विशेष रूप से उपचरित सद्भूत देखता है। केवल ज्ञान अवस्था में ज्ञान को क्षायिक अवस्था रूप-लोकालोक रूप देखना उपचरितसद्भूत है। अनुपचरित दृष्टि से तो उस समय भी ज्ञान गुण रूप ही है।

घटसद्भावे हि यथा घटनिरपेक्षं चिदेव जीवगुणः ।
अस्ति घटाभावेऽपि च घटनिरपेक्षं चिदेव जीवगुणः ॥५३७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—जिस प्रकार घट के सद्भाव में (घट को विषय करते समय) घट की अपेक्षा न करके केवल चिद् (ज्ञान) ही जीव का गुण है उसी प्रकार घट के अभाव में भी घट निरपेक्ष चित् (ज्ञान) ही जीव का गुण है।

भावार्थ—जिस समय ज्ञान में घट विषय पड़ा है उस समय भी वह घटाकार ज्ञान ज्ञान ही है। घटाकार होने से (घट को विषय) करने से) वह ज्ञान घटरूप अथवा घट का गुण नहीं हो जाता है। घटाकार का होना केवल ज्ञान का ही स्वरूप है जैसे दर्पण में किसी पदार्थ का प्रतिबिम्ब पड़ने से वह दर्पण पदार्थाकार हो जाता है। दर्पण का पदार्थाकार होना दर्पण की ही पर्याय है। दर्पण उस प्रतिबिम्बमूलक पदार्थ रूप नहीं हो जाता है तथा जैसा दर्पण पदार्थाकार होने पर भी वह अपने स्वरूप में है वैसा पदार्थाकार न होने पर भी वह अपने स्वरूप में है। ऐसा नहीं है कि पदार्थाकार होते समय पदार्थ के कुछ गुण दर्पण में आ जाते हों अथवा दर्पण के कुछ गुण पदार्थ में चले जाते हों। उसी प्रकार ज्ञान भी जैसा पदार्थाकार होते समय जीव का चैतन्य गुण है। वैसा पदार्थाकार बिना भी जीव का चैतन्य गुण है। दोनों अवस्थाओं में वह जीव का ही एक जैसा गुण है।

अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय की प्रवृत्ति में कारण

एतेन निरस्तं यन्मतमेतत्सति घटे घटज्ञानम्।
असति घटे न ज्ञानं न घटज्ञानं प्रमाणशून्यत्वात् ॥५३८॥

अर्थ—इस कथन द्वारा जो यह सिद्धांत है कि घट की उपस्थिति में घट का ज्ञान होता है तथा घट की अनुपस्थिति में न तो ज्ञान होता है तथा न घटज्ञान होता है खण्डित हो गया क्योंकि वह मान्यता प्रमाणशून्य है।

भावार्थ—बौद्ध सिद्धांत है कि पदार्थ ज्ञान में पदार्थ ही कारण है। बिना पदार्थ के उसका ज्ञान नहीं हो सकता, साथ ही ज्ञानमात्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी नहीं हो सकता क्योंकि जो भी ज्ञान होगा वह पदार्थ से ही उत्पन्न होगा अर्थात् पदार्थ के रहते हुये ही होगा। इस नय का ज्ञान होने पर यह कथन प्रमाण शून्य प्रतिभासित होने लगता है क्योंकि ज्ञान तो जीव का जीवोपजीवी गुण है। वह तो स्वतः सिद्ध है और अपनी योग्यता से–जाननशक्ति से स्वयं जानता है। इस नय की दृष्टि स्वतः जानने रूप पर्याय पर भी नहीं है किन्तु स्वतः सिद्ध स्वभाव पर है। केवल अभेद में भेद के कारण इसमें व्यवहारपना आया है।

अनुपचरितसद्भूत व्यवहारनय के जानने का फल

फलमास्तिक्यनिदानं सद्द्रव्ये वास्तवप्रतीतिः स्यात्।
भवति क्षणिकादिमते परमोपेक्षा यतो विनायासात् ॥५३९॥

अर्थ—इस नय का फल आस्तिक्यता का कारण बनता है क्योंकि सत् द्रव्य में वास्तव प्रतीति हो जाती है तथा क्षणिकादिमत् (बौद्धादिमत) में बिना किसी प्रयास के परम उपेक्षा हो जाती है।

भावार्थ—घटज्ञान अवस्था में भी ज्ञान को जीव का ही गुण समझना अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है और यही पदार्थ की यथार्थ प्रतीति का बीज है।

उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का वर्णन ५४० से ५४५ तक

उपचरितसद्भूत व्यवहार नय का लक्षण

उपचरितः सद्भूतो व्यवहारः स्यान्नयो यथा नाम।
अविरुद्धं हेतुवशात्परतोऽप्युपचर्यते यतः स्वगुणः ॥५४०॥

अर्थ—अविरुद्धतापूर्वक किसी हेतु से उस वस्तु के गुण का उसी में पर की अपेक्षा से भी जहां पर उपचरित किया जाता है वहां पर उपचरितसद्भूतव्यवहारनय प्रवर्तित होता है।

भावार्थ—यहां पर उसी वस्तु का गुण उसी में विवक्षित किया जाता है इतना अंश तो सद्भूत का स्वरूप है। गुणी से गुण का भेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया गया है, इतना अंश व्यवहार का स्वरूप है तथा वह गुण उस वस्तु में पर से उपचरित किया जाता है. इतना उपचरित अंश है। इसलिए ऐसे ज्ञानवाला उपचरित सद्भूत व्यवहार नय कहलाता है अथवा ऐसा उपचरित प्रयोग भी उसी नय का विषय है।

उपचरितसद्भूत व्यवहार नय का उदाहरण

अर्थविकल्पो ज्ञानं प्रमाणमिति लक्ष्यतेऽधुनापि यथा।
अर्थः स्वपरनिकायो भवति विकल्पस्तु चित्तदाकारं ॥५४१॥

अर्थ—जैसे अर्थ विकल्पात्मक ज्ञान प्रमाण है। यह प्रमाण का लक्षण है सो यह उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का उदाहरण है। यहां पर अर्थ नाम ज्ञान और परपदार्थों के समुदाय का है। विकल्प नाम ज्ञान का उस आकार रूप होना है अर्थात् स्व पर का ज्ञान होना ही प्रमाण है।

भावार्थ—ज्ञान अपने स्वरूप को जानता हुआ ही पर पदार्थों को जानता है यह उसकी प्रमाणता का हेतु है। स्व पर पदार्थों का निश्चयात्मक बोध ही प्रमाण कहलाता है और यह ज्ञान की विकल्पात्मक (ज्ञेयाकार) अवस्था है। यहां पर ज्ञान का स्वरूप उसके विषयभूत पदार्थों के उपचार से सिद्ध किया जाता है परन्तु ज्ञेयाकार रूप ज्ञान को जीव का ही गुण बतलाया गया है। इसलिये यह उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का विषय है। ज्ञान का यह लक्षण पर्याय की मुख्यता से है। गुण की अपेक्षा तो 'शुद्ध ज्ञान' कहा जाता है। इस लक्षण में क्योंकि ज्ञेयाकार ज्ञान का लक्षण कहा जाता है। उसे सुनकर ऐसा प्रतिभास सा होता है कि ज्ञान पराश्रित हो। वास्तव में ऐसा है नहीं क्योंकि यहां तो केवल पर से उपचार किया है और उपचार करने का कारण भी यह है कि विना विषय के ज्ञान का निरूपण कैसे करें। इस उदाहरण के अनुसार "ज्ञानप्रमाण है" इतना तो सद्भूत व्यवहार का उदाहरण ठहरता है और उसे अर्थविकल्पात्मक कहना यह उपचार ठहरता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद्यपि ज्ञान स्वरूपसिद्ध है तथापि उसे अर्थविकल्पात्मक बतलाया जाता है इसलिये वह उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का उदाहरण हुआ।

उपचरितसद्भूत व्यवहार नय की प्रवृत्ति में कारण ५४२-४३-४४

असदपि लक्षणमेतत्सन्मात्रत्वे सुनिर्विकल्पत्वात्।
तदपि न बिनालम्बान्निर्विषयं शक्यते वक्तुम् ॥५४२॥

अर्थ – ज्ञान यद्यपि निर्विकल्पक होने से सन्मात्र है इसलिये उपर्युक्त विकल्प स्वरूप लक्षण उसमें नहीं जाता है तथापि वह बिना अवलम्बन के निर्विषय नहीं कहा जा सकता है इसलिए इन नय के आश्रय से ऐसा कहना पड़ता है।

तस्मादनन्यशरणं सदपि ज्ञानं स्वरूपसिद्धत्वात्।
उपचरितं हेतुवशात् तदिह ज्ञान तदन्यशरणमिव ॥५४३॥

अर्थ—इसलिये यद्यपि ज्ञान दूसरों की अपेक्षा किये बिना ही स्वरूप सिद्ध होने से सत् रूप है अर्थात् ज्ञान अपने स्वरूप से स्वयं सिद्ध है। अतएव वह अनन्यशरण (उसका वही अवलम्बन) है तो भी हेतु वश वह ज्ञान अन्यशरण के समान उपचरित होता है अर्थात् तथापि हेतु के वश से यहां उसका दूसरे की अपेक्षा रूप से उपचार किया जाता है।

हेतुः स्वरूपसिद्धि बिना न परसिद्धिरप्रमाणत्वात्।
तदपि च शक्तिविशेषाद् द्रव्यविशेषे यथाप्रमाणं स्यात् ॥५४४॥

अर्थ—ऐसा होने में कारण भी यह है कि स्वरूप सिद्धि के बिना पर रूप से सिद्धि अप्रमाण ही है अर्थात् ज्ञान स्वरूप से सिद्ध है तभी वह पर से भी सिद्ध माना जाता है। ज्ञान स्वरूप से सिद्ध है इसमें कारण यह है कि वह द्रव्य विशेष (जीव द्रव्य) में गुण विशेष है। यह बात प्रमाणपूर्वक सिद्ध है।

भावार्थ—'अर्थविकल्पो ज्ञानं प्रमाणं" अर्थात् स्व-पर पदार्थ का बोध ही प्रमाण है। ऐसा ऊपर कहा गया है। इस कथन में ज्ञान में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाणता पर से लाई गई है। परन्तु पर से प्रमाणता ज्ञान में तभी आ सकती है जबकि वह अपने स्वरूप से सिद्ध हो, इसी बात को यहां पर स्पष्ट किया गया है कि ज्ञान अपने स्वरूप से स्वयं सिद्ध है कारण कि वह जीव द्रव्य का विशेष गुण है। स्वयं सिद्ध होकर ही वह पर से उपचरित कहा जाता है।

उपचरितसद्भूतव्यवहारनय के जानने का फल

अर्थो ज्ञेयज्ञायकसंकरदोषभ्रमक्षयो यदि वा ।
अविनाभावात् साध्यं सामान्यं साधको विशेषः स्यात् ॥५४५॥

अर्थ—उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का यह फल है कि ज्ञेय और ज्ञायक में अर्थात् ज्ञान और पदार्थों में संकर दोष न उत्पन्न हो तथा किसी प्रकार का भ्रम भी इनमें न उत्पन्न हो। यदि पहले ज्ञेय और ज्ञायक में संकर दोष अथवा दोनों में भ्रम हुआ हो तो इस नय के जानने पर वह दोष तथा वह भ्रम दूर हो जाता है। यहां पर अविनाभाव होने से सामान्य साध्य है तथा विशेष उसका साधक है अर्थात् ज्ञान साध्य है और घट ज्ञान पटज्ञान आदि (विकल्पात्मकज्ञान ज्ञेयाकार ज्ञान) उसका साधक है अर्थात् गुण साध्य है पर्याय साधक है। दोनों में अविनाभाव है।

भावार्थ—कोई पदार्थ के स्वरूप को नहीं समझने वाले ज्ञान को घटपटादि पदार्थों का धर्म बतलाते हैं तथा कोई कोई ज्ञेय के धर्म ज्ञायक में बतलाते हैं। अथवा विषय विषयी के सम्बन्ध में किन्हीं को भ्रम हो रहा है। उन सब का अज्ञान दूर करना ही इस नय का फल है। इस नय द्वारा यही बात बतलाई गई है कि विकल्पता ज्ञान का साधक है अर्थात् घटज्ञान, पटज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि ज्ञान के विशेषण साधक हैं। सामान्य ज्ञान साध्य है। उपर्युक्त विशेषणों से सामान्य ज्ञान की ही सिद्धि होती है। ज्ञान में घटादि धर्मता सिद्ध नहीं होती। ऐसा यथार्थ परिज्ञान होने से ज्ञेय ज्ञायक में संकरता का बोध कभी नहीं हो सकता है। सम्यग्दर्शन का विषय सामान्य ज्ञान है पर अनुभव में तो विशेष ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आता है। सामान्यविशेष ज्ञान का अविनाभाव होने से ज्ञानी इस नय द्वारा सामान्य ज्ञान को साध्य बना लेते हैं और विशेष ज्ञान को साधन बना लेते हैं और अपने इष्ट की सिद्धि कर लेते हैं। श्री द्रव्यसंग्रह में कहा है—

अट्ठचदुणाणदंसणसामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥६॥

इसमें आठ प्रकार के ज्ञान और चार प्रकार के दर्शन को (विशेष ज्ञान दर्शन को-पर्याय को) इसी व्यवहार नय से जीव का लक्षण कहा है। यही साधन है और शुद्ध ज्ञान और शुद्ध दर्शन (सामान्य ज्ञान दर्शन-गुण) जो शुद्ध नय (निश्चय नय) का विषय है वह साध्य है।

अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय का वर्णन (५४६ से ५४८ तक)

अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण

अपि वाऽसद्भूतो योऽनुपचरिताख्यो नयः स भवति यथा।
क्रोधाद्या जीवस्य हि विवक्षिताश्चेदबुद्धिभवाः ॥५४६॥

अर्थ—जो अबुद्धिपूर्वक होने वाले [वर्तमान बुद्धि (ज्ञान) में नहीं पकड़ में आने वाले-अव्यक्त] क्रोधादिक भाव जीव के विवक्षित किये जायें तो जो अनुपचरित नाम का असद्भूत नय है वह हो जाता है अर्थात् अबुद्धिपूर्वक राग को जीव का कहना अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है। इस नय से अबुद्धिपूर्वक राग को जीव का कहना ठीक है।

भावार्थ—क्रोधादिक भावों को जीव के कहना यह असद्भूत व्यवहार नय है यह पहले ५२९ में कह आये हैं। ये क्रोधादिक भाव दो प्रकार के होते हैं (१) अबुद्धिपूर्वक (अव्यक्त) (२) बुद्धिपूर्वक (व्यक्त) उसमें अबुद्धिपूर्वक भावों को जीव के कहना अनुपचरित है और बुद्धि-पूर्वक को जीव के कहना उपचरित है ये आगे कहेंगे। यहां पर वैभाविक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावों को जीव का कहना इतना अंश तो असद्भूत का है । गुण गुणी का भेद व्यवहार अंश है । अबुद्धिपूर्वक क्रोधादिकों को कहना इतना अंश अनुपचरित का है क्योंकि साधक जीव का ज्ञान उनको जुदा पकड़ नहीं सकता है ।

अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय की प्रवृत्ति में कारण

कारणमिह यस्य सतो या शक्तिः स्याद्विभावभावमयी ।
उपयोगदशाविशिष्टा सा शक्तिः स्यात्तदाप्यनन्यमयी ॥५४७॥

अर्थ—इस नय की प्रवृत्ति में कारण यह है कि जिस पदार्थ की जो शक्ति विभावमयी हो रही है और उपयोगदशा विशिष्ट है अर्थात् विभाव रूप कार्य कर रही है उस समय वह शक्ति अपने द्रव्य से ही अनन्यमयी (एकमेक-अभिन्न) है । ऐसा कहा जाता है ।

भावार्थ—यह व्यवहार अनुपचरित इसलिये कहलाया क्योंकि क्रोध चारित्र नामक निज गुण की ही विभाव दशा है । इन क्रोधादिकों की प्रवृत्ति के समय जीव और क्रोधादिक में अनन्यभाव प्रतीत होने लगता है और अभिन्नता का व्यवहार होने लगता है । यह इस नय की प्रवृत्ति में कारण है ।

अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय के जानने का फल

फलमागन्तुकभावाः स्वपरनिमित्ता भवन्ति यावन्तः ।
क्षणिकत्वान्नादेया इति बुद्धिः स्यादनात्मधर्मत्वात् ॥५४८॥

अर्थ—अपने और पर के निमित्त से होने वाले जितने भी आये हुये भाव (विभाव भाव) हैं वे सब आत्मा के धर्म न होने से क्षणिक हैं और क्षणिक होने से ग्रहण करने योग्य नहीं हैं ऐसी बुद्धि का होना ही इस नय का फल है । अर्थात् राग में हेय बुद्धि होना इस का फल है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपचरित असद्भूत व्यवहार नय का वर्णन (५४९ से ५५१ तक)

उपचरित असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण

उपचरितोऽसद्भूतो व्यवहाराख्यो नयः स भवति यथा ।
क्रोधाद्याः औदयिकाश्चितश्चेद्बुद्धिजा विवक्ष्याः स्युः ॥५४९॥

अर्थ—जो बुद्धिपूर्वक होने वाले औदयिक क्रोधादिक भाव जीव के विवक्षित किये जायें तो जो उपचरित असद्भूत व्यवहार नाम का नय है वह हो जाता है अर्थात् बुद्धिपूर्वक राग को जीव का कहना उपचरित असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है ।

भावार्थ—वास्तव में औदयिक भाव क्रोधादिक जीव का स्वरूप नहीं इतनाअंश तो असद्भूत का है तथा बुद्धि में जानने में आता है-व्यक्त है इस लिये वह उपचार योग्य होने से उपचरित, भेद रूप प्रवृत्ति व्यवहार । इस प्रकार उपचरित असद्भूत व्यवहार नय हुआ ।

उपचरित असद्भूत व्यवहार नय की प्रवृत्ति में कारण

बीजं विभावभावाः स्वपरोभयहेतवस्तथा नियमात् ।
सत्यपि शक्तिविशेषे न परनिमित्ताद्विना भवन्ति यतः ॥५५०॥

अर्थ—और इस की प्रवृत्ति में कारण यह है कि जितना भी विभाव भाव हैं वे नियम से स्व और पर दोनों के कारण से होते हैं क्योंकि द्रव्य में विभाव रूप से परिणमन करने की शक्ति विशेष के रहते हुये भी वे भाव पर निमित्त के बिना नहीं होते हैं अर्थात् आत्मा के गुणों का पुद्गल कर्म के निमित्त से वैभाविक रूप होना ही उपचरित असद्भूत व्यवहार नय का कारण है ।

भावार्थ—पर निमित्त बिना विभाव भाव होते नहीं हैं इस नय द्वारा ऐसा ज्ञान होने पर भव्य जीव निमित्त ऊपर की राग को उत्पन्न करने वाली पराश्रित बुद्धि छोड़कर स्वाश्रित दृष्टि कर लेता है । राग निमित्त बिना नहीं होता है इसका यह अर्थ नहीं कि निमित्त जीव को जबरदस्ती राग कराता है किन्तु इसका अर्थ यह कि जब जीव राग करता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है तो उसमें कर्म निमित्त पड़ता ही है। आत्मा निमित्त में जुड़े बिना राग नहीं कर सकता।

उपचरित असद्भूत व्यवहार नय के जानने का फल

तत्फलमविनाभावात्साध्यं तदबुद्धिपूर्वका भावाः।
तत्सत्तामात्रं प्रति साधनमिह बुद्धिपूर्वका भावाः ॥५५१॥

अर्थ—जहां बुद्धिपूर्वक राग भाव होता है वहां अबुद्धि पूर्वक होता ही है। ऐसा बुद्धिपूर्वक भावों का अबुद्धिपूर्वक भावों के साथ अविनाभाव है। अविनाभाव होने से अबुद्धिपूर्वक भाव साध्य हैं और उनकी सत्ता सिद्ध करने के लिये साधन बुद्धिपूर्वक भाव हैं। इस प्रकार इस बात को बतलाना ही इस नय का फल है। अर्थात् बुद्धिपूर्वक भावों से अबुद्धिपूर्वक भावों का परिज्ञान करना ही इस ज्ञान का फल है।

भावार्थ—इस नय के ज्ञान द्वारा जीव जान लेता है कि अबुद्धिपूर्वक राग की सत्ता आत्मा में है तथा यह भी जान लेता है कि यदि मैं अपने पुरुषार्थ से इन व्यक्त क्रोधादिकों को नष्ट करूंगा तो वे अबुद्धिपूर्वक स्वयं नष्ट हो जायेंगे। अबुद्धिपूर्वक अव्यक्त क्रोधादिक भावों की तो केवल सत्ता मात्र की ही प्रतीति होती है परन्तु वे अनुभव में नही आते। इनका निर्णय बुद्धिपूर्वक राग से अविनाभाव के कारण ज्ञानी कर लेते हैं। वर्तमान उपयोग में पकड़े हुआ बुद्धिपूर्वक कषाय अंश द्वारा वर्तमान उपयोग में नहीं पकड़ में आने वाले अबुद्धिपूर्वक कषाय अंश को साध्य बनाकर इन दोनों का आत्मा में नकार करना यही इन दोनों नयों के जानने का फल है। उपचरित असद्भूत तथा अनुपचरित असद्भूत ये दोनों एक ही समय के व्यक्त (लक्ष में आये हुये) और अव्यक्त (लक्ष में नहीं आवे) ऐसे दो प्रकार के विभाव भाव-आगमनशील भाव-औपपाधिक भाव हैं। इन दोनों नयों द्वारा उन दोनों भावों को ख्याल में लेकर इनको हेय रूप मानना—श्रद्धान करना यही इन दोनों नयों का प्रयोजन है—फल है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्लोक नं० ५३५ से ५५१ तक का सार

१. उपचरितसद्भूत व्यवहार नयः—"ज्ञान पर को जानता है"—ऐसा कहना अथवा तो ज्ञान में राग ज्ञात होने से "राग का ज्ञान है"—ऐसा कहना, अथवा ज्ञाता स्वभाव के भानपूर्वक ज्ञानी "विकार को भी जानता है"—ऐसा कहना उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का कथन है।

२. अनुपचरित सद्भत व्यवहार नयः—ज्ञान और आत्मा इत्यादि गुण-गुणी के भेद करना वह अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है। साधक को राग रहित ज्ञायक स्वभाव की दृष्टि हुई हो तथापि अभी पर्याय में राग भी होता है। साधक स्वभाव की श्रद्धा में राग का निषेध हुआ हो तथापि, उसे गुण भेद के कारण चारित्र गुण की पर्याय में अभी राग होता है। ऐसे गुण भेद से आत्मा को जानना वह अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है।

३. उपचरित असद्भूत व्यवहार नयः—साधक ऐसा जानता है कि अभी मेरी पर्याय में विकार होता है। उसमें जो व्यक्त राग-बुद्धिपूर्वक का राग-प्रकट ख्याल में लिया जा सकता है ऐसे बुद्धि पूर्वक के विकार को आत्मा का जानना यह उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है।

४. अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नयः—जिस समय बुद्धि पूर्वक का विकार है उस समय अपने ख्याल में न आ सके—ऐसा अबुद्धि पूर्वक का विकार भी है; उसे जानना वह अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय है।

शंका—किसी को ऐसी शंका हो सकती है कि व्यवहार नयों का ऐसा स्वरूप किसी अन्य ग्रंथ में (आगम में) नहीं कहा गया है तथा किसी को यह भी शंका हो सकती है कि एक वस्तु में होने वाली नयों को तो निश्चय नय कहते हैं। व्यवहार नय तो दो द्रव्यों में हुआ करती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। उस व्यवहार नय को ग्रंथकार ने नयाभास बतलाया है।

समाधान—आपकी दोनों बातें ठीक हैं। उनका समाधान शान्तिपूर्वक सुनिये। निम्न प्रकार हैं:—

ये नय दृष्टि खालिस अध्यात्म दृष्टि की है और अध्यात्म के ग्रंथ-राज श्री समयसार जी में से निकाली गई है। कहां और किस प्रकार देखिये श्री समयसार जी गाथा ६ में कहा है:—

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सो उ सो चेव ॥६॥

अर्थ—जो ज्ञायक भाव है वह अप्रमत्त भी नहीं है और प्रमत्त भी नहीं है। इस प्रकार उसे शुद्ध कहते हैं। और जो ज्ञायक रूप से ज्ञाता हुआ, वह तो वही है, अन्य कोई नहीं। (१) अप्रमत्त को अबुद्धि-पूर्वक राग कहते हैं। अबुद्धिपूर्वक राग को आत्मा का जानना यह तो आपकी अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय रही। (२) प्रमत्त को बुद्धि-पूर्वक राग कहते हैं। बुद्धिपूर्वक राग को आत्मा का जानना यह आपकी उपचरित असद्भूत व्यवहार नय रही।

आगे चलिये—गाथा ७ में कहा है:—

ववहारेणुवदिस्सइ णाणिस्स चरित्तदंसणं णाणं।
णवि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥७॥

अर्थ—ज्ञानी के चारित्र दर्शन ज्ञान ये तीन भाव व्यवहार से कहे जाते हैं; निश्चय से ज्ञान भी नहीं है, चारित्र भी नहीं है और दर्शन भी नहीं है ज्ञानी तो एक ज्ञायक शुद्ध ही है। (३) आत्मा दर्शन ज्ञान चारित्र पर्याय भेद रूप है यह आपकी उपचरित सद्भूत व्यवहार नय है। (४) आत्मा दर्शन ज्ञान चारित्र गुण भेद रूप है यह आप की अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है। सद्भूत व्यवहार नय के दोनों भेद गाथा नं० ७ में से निकाले हैं और असद्भूत व्यवहार नय के दोनों भेद गाथा ६ में से निकाले हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब आप कहेंगे यहां तो 'नहीं' रूप की गाथा है आपने 'हां' रूप कैसे अर्थ कर दिया है। इसका उत्तर यह है कि यहां निश्चय नय का कथन चला आ रहा है। निश्चय नय "नेति" को कहते हैं अर्थात् व्यवहार की प्रतिषेधक निश्चय है और व्यवहार प्रतिषेध्य है। ऐसा लक्षण स्वयं भी समयसार जी गाथा २७२ मूल में कहा है और टीकाकार ने उसका स्पष्टीकरण गाथा २७२ से २७७ तक किया है। वहां स्पष्ट यह लक्षण बांधा गया है। इस प्रकार श्रीकुन्दकुन्द भगवान गाथा ६ में कहते हैं कि असद्भूत व्यवहार नय जो आत्मा को प्रमत्त अप्रमत्त रूप स्थापित करता है पर निश्चय से आत्मा वैसा नहीं है। तथा गाथा ७ में कहते हैं कि सद्भूत व्यवहार नय जो आत्मा के स्वभाव में गुण पर्याय भेद करता है निश्चय से वैसा ही आत्मा नहीं है। श्रीकुन्दकुन्द भगवान के सूत्र ग्रन्थ हैं। उन्होंने दो गाथा में ही व्यवहार का पूर्ण स्वरूप कहकर वह प्रतिषेध्य है, हेय है, मोक्षमार्ग में कार्यकारी नहीं है यह भी कह दिया और इन्हीं दो गाथाओं में निश्चय नय प्रतिषेधक है, उपादेय है—वह एक ही कार्यकारी है यह भी स्पष्ट उल्लेख कर दिया है।

ग्रन्थराज के कर्त्ता श्री पंचाध्यायीकार ने वैसे तो सारा ग्रन्थ ही श्रीकुन्दकुन्द भगवान के वक्तव्य से निकाला है पर ये चार नय ही व्यवहार नय हैं ऐसा उपर्युक्त दो गाथा (आगम आधार) से निकाली गई हैं। दो द्रव्य के सम्बन्ध को बतलाने वाली नय नहीं हैं किन्तु नयाभास हैं। इसके श्री समयसार जी में निम्न प्रकरण हैं—(१) गाथा ८४ में शंकाकार ने दो द्रव्यों को व्यवहार नय की स्थापना की है। उस को गाथा ८५-८६ में खण्डन किया है। (२) गाथा ९८ में शंकाकार ने दो द्रव्यों को व्यवहार नय की स्थापना की है। उसका ९९ से १०८ तक खण्डन किया है। उपर्युक्त गाथा के आधार पर ही श्री पञ्चाध्यायीकार ने आगे श्लोक ५५२ से ५८७ तक की रचना की है जिस में दो द्रव्यों का कोई भी संबन्ध मानने वालों का या उन्हें नय कहने वालों का डट कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खण्डन किया है और उन्हें अनन्तसंसारी मिथ्यादृष्टि कहा है। पञ्चाध्यायीकार ने श्रीसमयसार जी में से किस प्रकार ये चार व्यवहार नय निकाले हैं इसके लिए विशेष जानने की इच्छा तो पूर्वप्रकाशित मासिक पत्र आत्मधर्म पढ़िये। सद्गुरुदेव श्री कानजी महाराज ने अपने प्रवचनों में विशद रूप से स्पष्ट किया है। अन्य ग्रन्थों में जो एक द्रव्य के राग परिणमन को निश्चय कहा है वह केवल कथन शैली का अन्तर है, भाव का नहीं, वास्तव में वह व्यवहार नय ही है। निश्चय नय तो सामान्य द्रव्य को दिखाता है। वह एक ही प्रकार का होता है उसमें भेद नहीं है।

अन्य ग्रन्थों में जो दो द्रव्यों के सम्बन्ध में व्यवहार नय का कथन है वह उपचार मात्र है। सिद्धान्त ग्रन्थों की ऐसी ही विवेचन की पद्धति है। इसका कारण यह है कि सिद्धान्त छः द्रव्यों का और उनके परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध का कथन करता है। उस निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धका पर्यायवाची नाम ही सिद्धान्त में व्यवहारनय है। पर उनका यह कदापि आशय नहीं कि एक द्रव्य का कर्तृत्व कुछ दूसरे द्रव्य में चला जाता है। ग्रन्थकार ने आगे ऐसे नयों के नाम-हेतु-दृष्टान्त कहने की स्वयं श्लोक ५६३ में प्रतिज्ञा करके—उनका निरूपण करके संयुक्तिक नयाभास सिद्ध किया है। आगे यह विषय आपको स्पष्ट हो जायेगा। बड़े ध्यान से पढ़ने का है अन्यथा दो द्रव्यों की एकत्वबुद्धि रूप मिथ्यात्व बना ही रहेगा।

व्यवहार नय का कथन समाप्त हुआ।

तीसरा अवान्तर अधिकार

सम्यक् नय और मिथ्या नय के परखने की कसौटी अथवा नयाभासों की भूमिका ५५२ से ५६५ तक

शंका

ननु चासद्भूतादिर्भवति स यत्रेत्यतद्गुणारोपः।
दृष्टांतादपि च यथा जीवो वर्णादिमानिहास्त्विति चेत् ॥५५२॥

शंका—असद्भूत व्यवहार नय वहां पर प्रवृत्त होता है जहां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक वस्तु के गुण दूसरी वस्तु में आरोपित किये जाते हैं। दृष्टांत जैसे—जीव को वर्णादिवाला कहना। क्या ऐसा मानें तो ठीक है ?

समाधान ५५३ से ५५५ तक

तन्न यतो न नयास्ते किन्तु नयाभाससंज्ञकाः सन्ति।
स्वयमप्यतद्गुणत्वादव्यवहाराविशेषतो न्यायात् ॥५५३॥

अर्थ—किसी एक वस्तु के गुणों को (अर्थात् भावों को) उसी के कहना तत्गुण है। तत्गुण वाले ही नय होते हैं। उन्हें ही सम्यक् (सच्चे) नय कहते हैं। एक वस्तु के गुणों को दूसरी वस्तु के कहना यह अतद्गुण है। अतद्गुण वाले सच्चे नय नहीं होते किन्तु नयाभास होते हैं। वे व्यवहार नय जैसे मालूम पड़ते हैं। लोक और आगम में व्यवहार नय के रूप में प्रयोग भी किये जाते हैं पर कसौटी पर कसने से वे नय नहीं किन्तु नयाभास ही सिद्ध होंगे। प्रमाण पूरी वस्तु को ग्रहण करता है। नय वस्तु के एक धर्म को ग्रहण करता है। यह लक्षण ही स्वयं बताता है कि एक वस्तु के धर्म को दूसरी के कहना नयाभास है (प्रमाण के लिये आगे देखिये ५६१)। तुमने जो जीव को वर्णादिमान् कहा है वह तो अतद्गुण है क्योंकि वर्णादिमान् तो पुद्गल का (शरीर का) धर्म है। आत्मा का भाव नहीं है। अतत्गुण होने से वह व्यवहार नय के योग्य नहीं है। इसलिये वह नय नहीं किन्तु नयाभास है।

भावार्थ—ग्रन्थकार ने पूर्व ५२९ में असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण यह किया है कि "बलपूर्वक एक द्रव्य के गुण जहां दूसरे द्रव्य में संयोजित किये जाते हैं" उसको असद्भूत व्यवहार नय कहते हैं जैसे पुद्गल के क्रोध को जीव का कहना। शिष्य ने उन्हीं शब्दों का आश्रय लेकर पुद्गल के वर्णादिक को जीव के कह दिया। शिष्य ने किया तो सब ठीक है, एक वस्तु के गुण ही दूसरी वस्तु में संयोजित किये हैं पर 'बलात्' शब्द को वह नहीं समझ पाया है। बलात् का अर्थ है—बलपूर्वक—कारणवश—जीव में विभाव परिणमन रूप कारण की सामर्थ्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से। क्रोधादिक वर्णवत् पुद्गल के हैं यह तो ठीक है और वे जीव के आरोपित किये गये हैं यह भी ठीक है पर वे कारणवश अर्थात् जीव में क्रोधादिक का विभाव परिणमन होने के कारण से- इस बल के आधार पर कहे हैं। जिस प्रकार क्रोधादिक जीव के चतुष्टय में होते हैं उस प्रकार वर्णादिक नहीं होते। वे तो प्रकट दूसरे धर्मी के धर्म हैं। एक धर्मी का दूसरे धर्मी से सब सम्बन्ध निषेध किया गया है। अतः एक धर्मी के धर्म को दूसरे धर्मी के कहना व्यवहार नहीं, व्यवहाराभास है। नय नहीं नयाभास है। सम्यक् नय नहीं, मिथ्या नय है। क्रोधादिक जीव के तद्गुण (भाव) हैं। वर्णादिक जीव के अतद्गुण हैं। तद्गुण नय होते हैं। अतद्गुण नयाभास होते हैं यह 'करणसूत्र' नहीं भूलना चाहिये।

व्यवहार नय का यह न्याय–कानून–कायदा है कि वह तद्गुण को (उस द्रव्य के गुणों को) ही उसके कहता है। इतना उसमें सच्चापन होना ही चाहिये। फिर भी व्यवहार होने का कारण यह है कि वे हैं अभेद रूप व्यवहार कहता है भेदरूप। जो 'अतद्गुण' हैं वे व्यवहार कोटि में नहीं आते ऐसा "अव्यवहाराविशेषतः न्यायात्" पद का अर्थ है। तद्गुण ही नय होता है इस कसौटी से सोनेवत् आप सब झूठे सच्चे नयों को परख सकते हैं जैसे ग्रंथकार आगे श्लोक ५३७ से ५८७ तक स्वयं कुछ नयों की परीक्षा इसी करण सूत्र के आधार पर करेंगे।

जैन धर्म और अन्य मतों में यही अन्तर है कि सब मत एक धर्मी का दूसरे धर्मी में कर्तृत्व, भोक्तृत्व, असर, प्रभाव इत्यादि मानते हैं किन्तु जैन धर्म प्रत्येक द्रव्य को अनादि अनन्त स्वतन्त्र अनुभव कराता है। इस भूल से तो जैन धर्म का सारा सिद्धांत ही गलत हो जाता है। यदि आप कहें कि जैन धर्म में भी निमित्त तो माना है। ठीक है निमित्त मात्र है। उपस्थिति मात्र है। धर्म द्रव्यवत् सब निमित्त उदासीन कारण मात्र हैं। इस का यह अर्थ नहीं कि वे बलात् उपादान में कुछ विलक्षणता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हैं। जैसे सूर्य के उदय पर सब लोग अपने अपने कार्य में स्वतः लग जाते हैं उस प्रकार है। जैन धर्म में असर, प्रभाव, कर्ता, प्रेरक इत्यादि सब शब्दों का अर्थ निमित्त मात्र ही है। पर्यायवाची शब्द हैं। इसी सिद्धांत के आधार पर नयाभासों का प्रकरण ग्रंथकार ने बड़ा सुन्दर लिखा है। उसकी यह भूमिका चल रही है।

तदभिज्ञानं चैतद्येऽतद्गुणलक्षणा नयाः प्रोक्ताः ।
तन्मिथ्यावादत्वाद् ध्वस्तास्तद्वादिनोऽपि मिथ्याख्याः ॥५५४॥

अर्थ—उसका स्पष्टीकरण यह है कि जो 'अतद्गुण लक्षण' नय कहे गये हैं वे मिथ्या कथन करने वाले होने से खण्डित हो जाते हैं और उनको सम्यक् नय कहने वाले (मानने वाले) भी मिथ्यावक्ता (मिथ्या कथन करने वाले) हैं।

तद्वादोऽथ यथा स्याज्जीवो वर्णादिमानिहास्तीति ।
इत्युक्ते न गुणः स्यात् प्रत्युत दोषस्तदेकबुद्धित्वात् ॥५५५॥

अर्थ - उस नयाभास का कथन इस प्रकार होता है जैसे 'जीव वर्णवाला है" अर्थात् गोरा है काला है ऐसा कहने पर कोई लाभ नहीं है उलटा दोष है क्योंकि उससे जीव और पुद्गल में एकत्वबुद्धि होने लगती है (और ऐसी बुद्धि का होना ही मिथ्यात्व है)।

शंका

ननु किल वस्तुविचारे भवतु गुणो वाथ दोष एव यतः ।
न्यायबलादायातो दुर्वारः स्यान्नयप्रवाहश्च ॥५५६॥

शंका—वस्तु के विचार (समय) में लाभ हो या दोष हो (अर्थात् जो वस्तु जिस रूप में है वह सिद्ध हो चाहे उस की यथार्थ सिद्धि में दोष आवे या गुण)। नयों का प्रवाह न्याय बल से प्राप्त हुआ है इस लिये वह दूर नहीं किया जा सकता ?

भावार्थ—जीव को वर्णादिमान् कहना से भी एक नय है। इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नय की सिद्धि में जीव और वर्णादि में एकता भले ही प्रतीत हो, परन्तु उसकी सिद्धि आवश्यक है ? ऐसा शंकाकार कहता है ।

समाधान ५५७ से ५६३ तक

सत्यं दुर्वारः स्यान्नयप्रवाहो यथाप्रमाणाद्वा ।
दुर्वारश्च तथा स्यात् सम्यङ् मिथ्येति नयविशेषोऽपि ।।५५७।।

अर्थ—यह बात ठीक है कि नय प्रवाह अनिवार्य है परन्तु साथ ही यह भी अनिवार्य है कि वह प्रमाणाधीन हो तथा कोई नय समीचीन (यथार्थ) होता है कोई मिथ्या होता है यह नयों की विशेषता भी अनिवार्य है । जैसे—

अर्थविकल्पो ज्ञानं भवति तदेकं विकल्पमात्रत्वात् ।
अस्ति च सम्यग्ज्ञानं मिथ्याज्ञानं विशेषविषयत्वात् ।।५५८।।

अर्थ—ज्ञान अर्थविकल्पात्मक होता है इसलिये ज्ञान सामान्य की अपेक्षा से ज्ञान एक ही है । यद्यपि अर्थविकल्पता सभी ज्ञानों में है परन्तु विशेष २ विषयों की अपेक्षा से उसी ज्ञान के दो भेद हो जाते हैं (१) सम्यग्ज्ञान (२) मिथ्याज्ञान ।

तत्रापि यथावस्तु ज्ञानं सम्यग्विशेषहेतुः स्यात् ।
अथ चेदयथावस्तु ज्ञानं मिथ्याविशेषहेतुः स्यात् ।।५५९।।

अर्थ—उन दोनों ज्ञानों में सम्यग्ज्ञान का कारण वस्तु का यथार्थ ज्ञान है तथा मिथ्या ज्ञान का कारण वस्तु का अयथार्थ ज्ञान है ।

भावार्थ—जो वस्तु ज्ञान में विषय पड़ी है उस वस्तु का वैसा ही ज्ञान होना जैसी कि वह है उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं जैसे किसी के ज्ञान में चांदी विषय पड़ी हो तो चांदी को चांदी ही वह समझे तब तो उसका वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान है और यदि चांदी को वह ज्ञान सीप समझे तो वह मिथ्या ज्ञान है । जिस ज्ञान में वस्तु तो कुछ और ही पड़ी हो और ज्ञान दूसरी ही वस्तु का हो उसे मिथ्याज्ञान कहते हैं । इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार विषय के भेद से ज्ञान के भी सम्यक् और मिथ्या ऐसे दो भेद हो जाते हैं उसी प्रकार—

ज्ञानं यथा तथासौ नयोऽस्ति सर्वो विकल्पमात्रत्वात् ।
तत्रापि नयः सम्यक् तदितरथा स्यान्नयाभासः ॥५६०॥

अर्थ—जिस प्रकार ज्ञान है उसी प्रकार नय भी है अर्थात् जैसे सामान्य ज्ञान एक हैं वैसे सम्पूर्ण नय भी विकल्पमात्र होने से सामान्य रूप से एक है और विशेष की अपेक्षा से ज्ञान के समान नय भी सम्यक्-नय और मिथ्यानय ऐसे दो भेद वाले हैं। जो सम्यक्नय हैं उन्हें नय कहते हैं। जो मिथ्या नय हैं उन्हें नयाभास कहते हैं।

नयों की कसौटी (करणसूत्र)

तद्गुणसंविज्ञानः सोदाहरणः सहेतुरथ फलवान् ।
यो हि नयः स नयः स्याद्विपरीतो नयो नयाभासः ॥५६१॥

अर्थ—(१) निश्चय से जो नय तद्गुणसंविज्ञान है अर्थात् विवक्षित वस्तु के गुणों को उसी का ज्ञान कराने वाला है। जीव के भाव वह जीव के तद्गुण हैं और पुद्गल के भाव वे पुद्गल के तद्गुण हैं ऐसा ठीक ठीक ज्ञान कराता है (२) उदाहरण सहित है। (३) हेतुपूर्वक है। (४) और फल सहित है, वह नय-नय कहलाता है। उपर्युक्त बातों से जो विपरीत हो वह नय नयाभास है।

भावार्थ—जो नय तद्गुणसंविज्ञान अर्थात् तद्गुण का बोधक (वस्तु के अपने भाव का बताने वाला) होता है तथा उदाहरण, हेतु और प्रयोजन सहित होता है वह विकलादेशात्मक (वस्तु के एक अंश को बताने वाला) वास्तविक नय कहलाता है तथा उससे विपरीत अर्थात् तद्गुणपणा, उदाहरण, हेतु और फल का जिसमें अभाव होता है वह नयाभास कहलाता है। ग्रन्थकार ने सम्यक् नयों के उदाहरण, उनकी प्रवृत्ति के कारण और फैल इत्यादिक सम्यक् नयों के प्रकरण में पीछे भी लिखे हैं और आगे भी लिखे हैं और मिथ्या नयों के उदाहरण, हेतु, फलादि मिथ्या नयों के प्रकरण में लिखे हैं। उन्हें बराबर बांच कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्पर मैलान करके देखना चाहिए। यह सूत्र सच्चे और मिथ्या नयों को परखने का खास काम देता है। कण्ठस्थ करने योग्य है। पुनः पुनः विचारने योग्य है। इसी सूत्र के बल पर ग्रन्थकार ने सम्यक्नयों का सम्यक्पना और मिथ्यानयों का मिथ्यापना स्पष्ट दर्पणवत् दिखलाया है। तद्गुणसंविज्ञान और अतद्गुणसंविज्ञान खास समझने की वस्तु है। यह शब्द मूल कसौटी है। गुरुवों ने कमाल किया है। कोई कोई बात तो ऐसी कही है कि वाह वाह (१) राग को जीव का कहना यह सम्यक्नय का उदाहरण है। वर्ण को जीव का कहना यह मिथ्यानय का उदाहरण है। (२) राग जीव का भाव है। उसके वैभाविक गुण के कारण उसी का परिणमन है यह राग को जीव का कहने का हेतु (कारण) है और वर्ण पुद्गल का धर्म है यह इसको नयाभास कहने में हेतु है (३) राग को जीव का असद्भूतव्यवहार नय से जान कर, उसे क्षणिक समझ कर, नाश करके जीव सम्यग्दृष्टि बन जाता है यह इस नय की प्रवृत्ति का फल है। वर्ण को जीव का मानकर जीव एकत्वबुद्धि का पोषक मिथ्यादृष्टि बन जाता है यह नयाभास की प्रवृत्ति का फल है (४) राग जीव का गुण अर्थात् भाव होने से जीव का तद्गुण है और असद्भूतव्यवहारनय उसे जीव का ही ज्ञान कराती है यह तद्गुणसंविज्ञान है और जो तद्गुण संविज्ञान है वह सम्यक्नय है। तथा वर्ण जीव का गुण अर्थात् भाव न होने से अतद्गुण है। और उसे जीव का गुण रूप ज्ञान कराने वाला अतद्गुणलक्षण नयाभास है। इस प्रकार सम्पूर्ण सम्यक् और मिथ्या नयों पर यह श्लोक आपको लगाना आना चाहिये तथा इसके द्वारा आप सम्यक और मिथ्या सब नयों की परीक्षा कर सकते हैं। बड़ी होशयारी की जरूरत है अन्यथा अनादिकालीन मिथ्यात्व का भूत दूर न होगा और वह जीव की गर्दन पकड़ ही रक्खेगा। इस पापी से बचने के लिए सावधान रहिए। इसमें गुण शब्द गुण, पर्याय, स्वभाव, विभाव अर्थात् जो कुछ एक द्रव्य के चतुष्टय में है उस सब का द्योतक है। यहां गुण शब्द

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसिद्ध गुण शब्द के अर्थ में नहीं है। यहां राग जीव का गुण है।

पंचाध्यायी के यह ५६१ से ५८७ तक के श्लोक बहुत उपयोगी हैं। मुमुक्षु को उनका बराबर वांचकर उनका भाव यथार्थ समझने की जरूरत है। निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध को यथार्थपने समझे बिना उन सम्बन्धी जो झूठी मान्यतायें चल रही हैं वे इनको समझने से दूर हो जायेंगी। "एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की व्याप्यव्यापक भाव से कर्ता नहीं है यह तो ठीक परन्तु निमित्तनैमित्तिक भाव से तो कर्ता है ? अथवा किसीसमय उपादान कारण की मुख्यता से कार्य होता है और किसी समय निमित्त कारण की मुख्यता से कार्य होता है" ऐसा जो मिथ्या अध्यास जीवों को रहा करता है वह इन श्लोकों को यथार्थपने समझने से दूर हो जायगा। इसलिये इन श्लोकों को सावधानतापूर्वक वांचकर उनका भाव यथार्थपने समझने की प्रार्थना है।

फलवत्त्वेन नयानां भाव्यमवश्यं प्रमाणवद्धि यतः ।
स्यादवयवि प्रमाणं स्युस्तदवयवा नयास्तदंशत्वात् ॥५६२॥

अर्थ—जिस प्रकार प्रमाण फल सहित होता है उस प्रकार नयों का भी फल सहित होना परम आवश्यक है कारण अवयवी प्रमाण कहलाता है। उसी के अवयव नय कहलाते हैं। नय प्रमाण के ही अंश रूप हैं।

भावार्थ—नयों की उत्पत्ति में प्रमाण योनिभूत (मूल कारण) है। प्रमाण से जो पदार्थ कहा जाता है उसके एक अंश को लेकर जो पदार्थ का विवेचन किया जाता है उसे ही नय कहते हैं अथवा सम्पूर्ण पदार्थ को प्रमाण विषय करता है और उसके एक देश को नय विषय करता है। इस प्रकार अंश अंशीरूप होने से प्रमाण के समान नय भी फलविशिष्ट ही होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्मादनुपादेयो व्यवहारोऽतद्गुणे तदारोपः ।
इष्टफलाभावादिह न नयो वर्णादिमान् यथा जीवः ॥५६३॥

अर्थ—इसलिये जिस वस्तु में जो गुण (भाव) नहीं हैं उस वस्तु में उन गुणों का आरोप करने रूप व्यवहार उपादेय नहीं है क्योंकि ऐसे व्यवहार से इष्ट फल (सम्यग्ज्ञान) की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिये जीव को वर्णादिवाला कहना नय नहीं है किन्तु नयाभास है क्योंकि इस से उलटी मिथ्यात्व की पुष्टि होती है।

भावार्थ—शंकाकार न ऊपर कहा था कि जीव को वर्णादिमान् कहना इसको असद्भूत व्यवहार नय कहना चाहिये। ग्रन्थकार कहते हैं कि यह नय नहीं किन्तु नयाभास है। क्योंकि जीव के वर्णादि गुण नहीं हैं फिर भी उन्हें जीव के कहने से जीव और पुद्गल में एकत्व बुद्धि होने लगेगी। यह इष्ट फल की हानि है।

शंका

ननु चैवं सति नियमादुक्तासद्भूतलक्षणो न नयः ।
भवति नयाभासः किल क्रोधादीनामतद्गुणारोपात् ॥५६४॥

शंका—ऐसा होने पर तो (अर्थात् यदि एक वस्तु के गुण दूसरे वस्तु में आरोपित करने का नाम नयाभास है तो ऐसा मानने से जो ऊपर (५२९ में) असद्भूत व्यवहार नय कहा गया है उसे भी नय नहीं कहना चाहिये किन्तु नयाभास कहना चाहिये। कारण क्रोधादिक जीव के गुण नहीं हैं फिर भी उन्हें जीव के कहा गया है। यह भी तो अतद्गुणारोप ही है। इसलिये आप (ग्रंथकार) का कहा हुआ भी असद्भूत व्यवहार नय नयाभास ही है ?

भावार्थ—शंकाकार का कहना है कि जिस प्रकार अतद्गुणारोप से आप क्रोधादि को जीव का कहकर नय कहते हैं उसी प्रकार मैं वर्णादि को जीव का कहकर नय कहता हूं। यदि आपका सम्यक् न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है तो मेरा भी सम्यक्नय है। यदि मेरा नयाभास हैं तो आपका भी नयाभास होना चाहिये ?

समाधान

नैवं यतो यथा ते क्रोधाद्या जीवसंभवा भावाः ।
न तथा पुद्गलवपुषः सन्ति च वर्णादयो हि जीवस्य ॥५६५॥

अर्थ—शंकाकार का उपर्युक्त कहना ठीक नहीं है क्योंकि जिस प्रकार क्रोधादिक भाव जीव में उत्पन्न होते हैं अथवा जीव के हैं। उस प्रकार पुद्गलमय वर्णादिक जीव के भाव नहीं हैं।

भावार्थ—पुद्गल कर्म के निमित्त से आत्मा के चारित्र गुण का जो विकार है उसे ही क्रोध, मान, माया लोभादिक के नाम से कहा जाता है। इसलिये क्रोधादिक आत्मा के ही वैभाविक भाव हैं। अतः जीव में उनको आरोप करना अतद्गुणारोप नहीं कहा जा सकता किन्तु तद्गुणारोप ही है। वे भाव शुद्धात्मा के नहीं है किन्तु पर के निमित्त मात्र से होते हैं इसलिये उन्हें असद्भूत नय का विषय कहा जाता है। चाहे सद्भूत हो अथवा असद्भूत हो तद्गुणारोपी ही नय है अन्यथा वह नयाभास है। रूप रस गन्धादिक पुद्गल के ही गुण हैं, वे जीव के किसी प्रकार नहीं कहे जा सकते हैं। रूप रसादि को जीव के भाव कहना, यह अतद्गुणारोप है इसलिये यह नयाभास है।

पुनः भावार्थ—ऊपर कही हुई शंका ठीक नहीं है कारण कि वे क्रोधादिक भाव तो जीव में होने वाले औदयिक भाव रूप हैं इसलिये वे जीव के तद्गुण हैं और वे जीव के नैमित्तिक भाव होने से उनको सर्वथा पुद्गल के नहीं कह सकते पर जो जीव को वर्णादि वाला कहने में आवे वहां तो वर्णादिक सर्वथा पुद्गल के ही होने से वे जीव के किस प्रकार हो सके ? तथा क्रोधादिकभाव को जीव का कहने में तो यह प्रयोजन है कि परलक्ष से होने वाले क्रोधादिभाव क्षणिक होने से और आत्मा का स्वभाव नहीं होने से वे उपादेय नहीं हैं इसलिये उनको टालना चाहिये,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा सम्यग्ज्ञान होता है इसलिये क्रोध को जीव का कहना-इसमें तो उपर्युक्त सम्यक् नय लागु पड़ सकता है परन्तु जीव को वर्णादि वाला कहने में तो कुछ भी प्रयोजन की सिद्धि नहीं हो सकती है। इसलिये जीव को क्रोधादिवाला कहने वाले असद्भूत व्यवहार नय में तो नयाभासपने का दोष नहीं आता है पर जीव को वर्णादिवाला कहने में तो एकत्वबुद्धि का दोष आता है। अतः वह नयाभास है।

५५२ से ५६५ तक का सार

यहां समीचीन नय और मिथ्या नय में क्या अन्तर है यह स्पष्ट करके बतलाया गया है। सम्यग्ज्ञान मिथ्याज्ञान में यह भेद माना गया है कि सम्यग्ज्ञान से स्व और पर का भेद प्राप्त होता है किन्तु यह भेद मिथ्याज्ञान से नहीं प्राप्त होता। नय सम्यग्ज्ञान का एक भेद है। अतः समीचीन नय वही कहला सकता है जिसके द्वारा विवक्षित वस्तु के गुण धर्म उसी के कहे जावें। इस नियमानुसार विचार करने पर जो नय जीव को वर्णादिवाला बतलाता है अथवा जिस नय की दृष्टि से यह सिद्ध किया जाता है कि "शरीर मेरा है या घर, स्त्री और पुत्रादिक मेरे हैं" वह नय मिथ्या ठहरता है। क्योंकि जबकि उक्त प्रकार का ज्ञान मिथ्या माना गया है तब ऐसे नय का मिथ्या रूप सुतरां सिद्ध है।

यद्यपि क्रोधादिक औपाधिक भाव आत्मा के नहीं कहे जा सकते, क्योंकि शुद्ध आत्मा में इनकी उपलब्धि नहीं होती। तथापि इन का उपादान कारण जीव ही है। अतः ये असद्भूत व्यवहार नय की अपेक्षा जीव के कहे गये हैं। पर वर्णादिक (शरीरादिक) के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती, अतः उन्हें जीव का कहना समीचीन नय का विषय नहीं माना जा सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौथा अवान्तर अधिकार

नयाभासों का निरूपण ५६६ से ५८७ तक

प्रतिज्ञा

अथ सन्ति नयाभासा यथोपचाराख्यहेतुदृष्टान्ताः ।
अत्रोच्यन्ते केचिद्धेयतया वा नयादिशुद्धचर्थम् ॥५६६॥

अर्थ—उपचार के अनुकूल है संज्ञा हेतु और दृष्टांत जिन्हों के ऐसे जो नयाभास हैं। अर्थात् जो आगम तथा लोक व्यवहार में रूढ़िवश नय रूप से प्रचलित हैं किन्तु हैं नयाभास, जिनमें नयों का वास्तविक लक्षण तो घटता नहीं परन्तु संज्ञा हेतु दृष्टांत द्वारा वे नयों जैसे प्रतिभासित होते हैं। उनमें से यहां पर कुछ नयाभासों का उल्लेख किया जाता है। वह इसलिये कि उन नयाभासों को समझकर उन्हें छोड़ दिया जाये अथवा उन नयाभासों के जानने से शुद्ध नयों का परिज्ञान हो जाय। जो नय के समान तो मालूम पड़ते हों परन्तु जिनमें ५६१ के अनुसार 'तद्गुणसंविज्ञान' इत्यादि नय का लक्षण नहीं घटता हो उन्हें नयाभास कहते हैं।

पहला नयाभास ५६७ से ५७१ तक

अस्ति व्यवहारः किल लोकानामयमलब्धबुद्धित्वात् ।
योऽयं मनुजादिवपुर्भवति स जीवस्ततोऽप्यनन्यत्वात् ॥५६७॥

अर्थ—भेदविज्ञान की प्राप्ति न होने से लोकों का यह व्यवहार होता है कि जो यह मनुष्यादि का शरीर है वह जीव है क्योंकि वह जीव से अभिन्न है।

सोऽयं व्यवहारः स्यादव्यवहारो यथापसिद्धान्तात् ।
अप्यपसिद्धान्तत्वं नासिद्धं स्यादनेकधर्मित्वात् ॥५६८॥

अर्थ—शरीर में जीव का व्यवहार जो लोक में तथा आगम में होता है वह व्यवहार अयोग्य व्यवहार है कारण कि वह सिद्धान्त विरुद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। सिद्धान्त विरुद्धता इस व्यवहार में असिद्ध नहीं है किन्तु शरीर और जीव भिन्न भिन्न धर्मी होने से प्रसिद्ध ही है।

भावार्थ—शरीर पुद्गल द्रव्य भिन्न पदार्थ है और जीव चैतन्य द्रव्य भिन्न पदार्थ है फिर भी जो लोग शरीर में जीव व्यवहार करते हैं वे अवश्य सिद्धान्त विरुद्ध कहते हैं।

नाशंक्यं कारणमिदमेकक्षेत्रावगाहिमात्रं यत् ।
सर्वद्रव्येषु यतस्तथावगाहाद्भवेदतिव्याप्तिः ॥५६९॥

अर्थ—शरीर और जीव दोनों का एक क्षेत्र में अवगाहन (स्थिति) है, इसलिये जो यह एकक्षेत्रावगाहित्व है वह मनुष्यादि शरीर को जीव कहने रूप व्यवहार में कारण हो जायगा ऐसी आशंका भी नहीं करना चाहिये क्योंकि एकक्षेत्र में तो सम्पूर्ण द्रव्यों का अवगाहन हो रहा है। यदि एक क्षेत्र में अवगाहन होना ही एकता का कारण हो तो सभी पदार्थों में अतिव्याप्ति दोष उत्पन्न होगा।

अपि भवति बन्ध्यबन्धकभावो यदिवानयोर्न शंक्यमिति ।
तदनेकत्वे नियमात्तद्बन्धस्य स्वतोऽप्यसिद्धत्वात् ॥५७०॥

अर्थ—कदाचित् मनुष्यादि शरीर में जीवत्वबुद्धि का कारण यह कहा जाये कि जीव और शरीर में परस्पर वन्ध्य बन्धक भाव है इसलिए ऐसा व्यवहार होता है. ऐसी आशंका भी नहीं करना चाहिये क्योंकि नियम से उन दोनों में अनेकपना होने से अर्थात् शरीर और आत्मा भिन्न २ धर्मी होने से उन दोनों का बंध भी स्वयं असिद्ध है अर्थात् बंध ही नहीं है।

अथ चेदवश्यमेतन्निमित्तनैमित्तिकत्वमस्ति मिथः ।
न यतः स्वयं स्वतो वा परिणममानस्य किं निमित्ततया ॥५७१॥

अर्थ—कदाचित् मनुष्यादि शरीर में जीवत्व बुद्धि का कारण शरीर और जीव का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध हो, ऐसा भी नहीं कहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जा सकता कारण कि जो अपने आप परिणमनशील है उसके लिये निमित्तपने से क्या प्रयोजन ? (इसमें ठीक वही भाव है जो श्रीसमयसार जी में गाथा ११६ से १२५ तथा कलश नं० ६४, ६५ में है)।

दूसरा नयाभास ५७२ से ५७६ तक

अपरोऽपि नयाभासो भवति यथा मूर्तस्य तस्य सतः ।
कर्ता भोक्ता जीवः स्यादपि नोकर्मकर्मकृतेः ॥५७२॥

अर्थ—(आहारवर्गणा, भाषावर्गणा, तैजसवर्गणा, मनोवर्गणा ये चार वर्गणायें जब आत्मा से सम्बन्धित होती हैं. तब वे नोकर्म के नाम से कही जाती हैं और कार्मण वर्गणायें जब आत्मा से सम्बन्धित होकर कर्मरूप-ज्ञानावरणादिरूप परिणत होती हैं तब वे कर्म के नाम से कही जाती हैं। ये कर्म और नोकर्म पुद्गल की पर्यायें हैं। अतएव वे मूर्त हैं) उस मूर्त कर्म नोकर्म का जीव कर्ता तथा भोक्ता है ऐसा कहना दूसरा नयाभास है।

भावार्थ—जीव अमूर्तस्वरूप वाला है। वह अपने रागादिभावों का कर्ता तथा वैषयिक सुख दुःख का भोक्ता भी अज्ञानावस्था तक व्यवहार से है परन्तु जो उसे मूर्त कर्म नोकर्म का कर्ता भोक्ता बतलाते हैं उस विषय में ग्रन्थकार कहते हैं कि वह नय नहीं किन्तु नयाभास है। श्री द्रव्यसंग्रह में जो व्यवहार से कर्ता कहा है वह केवल निमित्त नैमित्तिक संबंध का ज्ञान कराने के लिए लिखा है। उसका यह कदापि अर्थ नहीं है कि जीव कर्म नोकर्म का कर्ता है। ऐसा अर्थ समझना अपनी बुद्धि का अपराध है। या गुरुगम से तत्त्व का अभ्यास न होने के कारण विपरीत धारणा है। आचार्य देव की इसमें कोई खता नहीं है।

नाभासत्त्वमसिद्धं स्यादपसिद्धान्ततो नयस्यास्य ।
सदनेकत्वे सति किल गुणसंक्रान्तिः कुतः प्रमाणाद्वा ॥५७३॥

अर्थ—मूर्त कर्मों का जीव को कर्ता भोक्ता बतलाने वाला व्यवहार नय नयाभास है यह बात असिद्ध नहीं है कारण ऐसा व्यवहार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नय सिद्धान्त विरुद्ध है। सिद्धान्त विरुद्धता का भी कारण यह है कि कर्म और जीव दोनों भिन्न भिन्न पदार्थ हैं तब उनमें गुणसंक्रमण किस प्रमाण से होगा ? अर्थात् नहीं होगा।

गुणसंक्रान्तिमृते यदि कर्ता स्यात्कर्मणश्च भोक्तात्मा।
सर्वस्य सर्वसंकरदोषः स्यात् सर्वशून्यदोषश्च ॥५७४॥

अर्थ—तथा बिना गुणों के परिवर्तन हुये जीव, कर्म का कर्ता भोक्ता नहीं हो सकता। यदि बिना गुणों की संक्रान्ति के ही जीव कर्म का कर्ता भोक्ता हो जाय तो सब पदार्थों में सर्वसंकरदोष उत्पन्न होगा तथा सर्वशून्य दोष भी उत्पन्न होगा।

भावार्थ ५७३–५७४—यदि जीव के गुण पुद्गल में चले जांय तभी जीव पुद्गल का कर्ता भोक्ता हो सकता है। कपड़ा बुनने वाले के कुछ गुण या सब गुण उस कपड़े में आयें तभी वह बुनने वाला उस कपड़े का कर्ता कहा जा सकता है अन्यथा कपड़े में उसकी कर्तृता क्या आई ? कुछ भी नहीं। यदि बिना गुणों का संक्रमण होवे ही जीव पुद्गल का कर्तृत्व माना जाय तो सभी एक दूसरे के कर्ता हो सकते हैं ऐसी अवस्था में धर्मादि द्रव्यों का भी जीव में कर्तृत्व सिद्ध होगा।

अस्त्यत्र भ्रमहेतुर्जीवस्याशुद्धपरिणतिं प्राप्य।
कर्मत्वं परिणमते स्वयमपि मूर्तिमद्यतो द्रव्यम् ॥५७५॥

अर्थ—जीव कर्मों का कर्ता है इस भ्रम का कारण भी यह है कि जीव की अशुद्ध परिणति के निमित्त से पुद्गलद्रव्य-कार्मण वर्गणा स्वयं (उपादान) कर्मरूप परिणत हो जाती हैं।

भावार्थ—जीव के राग द्वेष मोह भावों के निमित्त से कार्मण वर्गणा स्वयं कर्मपर्याय को धारण करती हैं इसलिये उनमें जीवकर्तृता का भ्रम होता है। भाव यह है कि कार्मण वर्गणायें कर्मरूप परिणमन अपनी परिणमन शक्ति के कारण स्वकाल की योग्यता से करती हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिये जीव उनका रंचमात्र कर्ता नहीं है पर क्योंकि जीव का राग उनको निमित्त रूप से उपस्थित है इसलिये अज्ञानी जीवों को ऐसा भ्रम होने लगता है कि यह जीव के राग ने बनाई या स्वयं जीव ने बनाई।

इदमत्र समाधानं कर्ता यः कोपि सः स्वभावस्य।
परभावस्य न कर्ता भोक्ता वा तन्निमित्तमात्रेऽपि ॥५७६॥

अर्थ—उस भ्रम का समाधान यह है कि जो कोई भी कर्ता होगा वह अपने भाव का ही कर्ता होगा। परभाव का निमित्तमात्र होने पर भी कोई परभाव का कर्ता अथवा भोक्ता नहीं हो सकता है।

भावार्थ—भाव यह है कि जब तक जीव अज्ञानी है तब तक उसे अपने राग भाव का कर्ता कह भी सकते हैं पर कर्मों का कर्ता तो उसे भी नहीं कह सकते हैं। उस प्रकार दुःख सुख भावों का भोगता तो कह सकते हैं पर कर्म का या परवस्तु का भोगता तो नहीं कह सकते।

दृष्टान्त

भवति स यथा कुलालः कर्ता भोक्ता यथात्मभावस्य।
न तथा परभावस्य च कर्ता भोक्ता कदापि कलशस्य ॥५७७॥

अर्थ—कुम्हार सदा अपने भाव का ही कर्ता भोक्ता होता है वह पर भाव रूप कलश का कर्त्ता भोक्ता कभी नहीं होता।

तदभिज्ञानं च यथा भवति घटो मृत्तिकास्वभावेन।
अति मृण्मयो घटः स्यान्न स्यादिह घटः कुलालमयः ॥५७८॥

अर्थ—कुम्हार कलश का कर्ता क्यों नहीं है इस विषय में यह दृष्टान्त प्रत्यक्ष है कि घट मिट्टी के स्वभाव वाला होता है अथवा मिट्टी स्वरूप ही वह होता है परन्तु घट कभी कुम्हार के स्वभाव वाला अथवा कुम्हार स्वरूप नहीं होता।

भावार्थ—जब घट के भीतर कुम्हार का एक भी गुण नहीं पाया जाता तब कुम्हार ने घट का क्या किया? कुछ नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ चेद्घटकर्त्तासौ घटकारो जनपदोक्तिलेशोऽयम् ।
दुर्वारो भवतु तदा का नो हानिर्यदा नयाभासः ॥५७९॥

अर्थ—यदि यह कहा जाय कि लोक में यह व्यवहार होता कि घटकार (कुम्हार) घट का बनाने वाला है; सो क्यों ? ग्रन्थकार कहते हैं कि उस व्यवहार को होने दो, उससे हमारी कोई हानि नहीं परन्तु उसे नयाभास समझो ।

तीसरा नयाभास ५८० से ५८४ तक

अपरे बहिरात्मानो मिथ्यावादं वदन्ति दुर्मतयः ।
यदबद्धेऽपि परस्मिन् कर्ता भोक्ता परोऽपि भवति यथा ॥५८०॥

अर्थ—और भी खोटी बुद्धि के धारण करने वाले मिथ्या पुरुष मिथ्या बातें कहते हैं जैसे—जो पर पदार्थ सर्वथा दूर है । जीव के साथ जो बंधा हुआ भी नहीं है उसका भी जीव कर्ता भोक्ता होता ऐसा वे कहते हैं ।

सद्वेद्योदयभावात् गृहधनधान्यं कलत्रपुत्रांश्च ।
स्वयमिह करोति जीवो भुनक्ति वा स एव जीवश्च ॥५८१॥

अर्थ—जैसे सातावेदनीय कर्म के उदय से होने वाले जो धन, धान्य, स्त्री, पुत्र आदि सजीव निर्जीव पदार्थ हैं उनको जीव स्वयं कर्त्ता है और वही जीव उनको भोक्ता है ।

शंका

ननु सति गृहवनितादौ भवति सुखं प्राणिनामिहाध्यक्षात् ।
असति च तत्र न तदिदं तत्तत्कर्त्ता स एव तद्भोक्ता ॥५८२॥

शंका—यह बात प्रत्यक्ष देखते हैं कि घर स्त्री आदि के पर ही जीवों को सुख होता है । उनके अभाव में उन्हें सुख भी होता । इसलिये जीव ही उनका कर्ता है और वही उनका भोक्ता है ।

भावार्थ—अपनी सुख सामग्री को यह जीव स्वयं करता है स्वयं उसको भोगता है । ऐसा शंकाकार कहता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्यं वैषयिकमिदं परमिह तदपि न परत्र सापेक्षम् ।
सति बहिरर्थेऽपि यतः किल केषाञ्चिदसुखादिहेतुत्वात् ॥५८३॥

अर्थ—ठीक है इस जगत में यह संसारिक सुख केवल वैषयिक है अर्थात् विषयों में सुख की मात्र कल्पना अज्ञानियों ने करी है तो भी वह कल्पित सुख परविषयों की अपेक्षा से नहीं उत्पन्न होता है कारण कि निश्चय से वे वाह्य पदार्थ उपस्थित होने पर भी किसी के घर स्त्री वगैरह में दुःखादिक के कारण की कल्पना होती है। अतः व्यभिचार दोष है।

भावार्थ—क्योंकि धन स्त्री आदि वाह्य पदार्थों के रहने पर भी वे किन्हीं के लिये दुःख के कारण भी देखे जाते हैं यह व्यभिचारी दोष आने से तुम्हारी बात ठीक नहीं है।

इदमत्र तात्पर्यं भवतु स कर्ताथ वा च मा भवतु ।
भोक्ता स्वस्य परस्य च यथाकथञ्चिच्चिदात्मको जीवः ॥५८४॥

अर्थ—वह जीव स्व का कि पर का कर्ता तथा भोक्ता हो कि न हो, परन्तु यहां तात्पर्य यह है कि जीव कोई भी प्रकार से ज्ञान स्वरूप ही है इसलिये ज्ञान सिवाय दूसरा कोई उसका कर्तव्य नहीं है।

भावार्थ—सारांश यह है कि अज्ञानियों की व्यवहार में जीव पर पदार्थों का कर्ता भोक्ता कहवाय या न कहवाय, उससे हमको कुछ प्रयोजन नहीं है, परन्तु यहां भेदविज्ञान कराने का प्रयोजन होने से हमको तो मात्र इतना ही कहना है कि जीव हर प्रकार से ज्ञान स्वरूप ही है। जीव की सब पर्यायें कभी अपने चैतन्यपने को छोड़ती नहीं है। इसलिये वास्तविकपणे आत्मा के निज भावों का कर्ता आत्मा ही है और कर्ता की तरह निज भावों का भोक्ता भी आत्मा ही है। पर का न कर्ता है न भोगता है। जीव परपदार्थों का कर्ता भोक्ता हो कि न हो ऐसा कहा है। इससे यह बात शंका में छोड़ी है यह न समझना। यहां तो जीव को ज्ञान स्वरूप कह कर स्व कि पर के कर्ता भोक्तापने का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकल्प तक भी छुड़ाया है। ग्रन्थकार ने यह श्लोक श्री समयसार जी कलश नं० २०६ पर से लिया है ठीक ज्यों का त्यों वही भाव है। अधिक जानने की इच्छा हो तो उस कलश को देखिये। विशेषतया पं० राजमल कृत हिन्दी कलश टीका देखिये।

नोट—दूसरे तीसरे नयाभास का उपादेय तत्त्व निम्नलिखित हरिगीत में पाठकों के विनोदार्थ लिखा गया है—

अज्ञान तक तो आत्मा अज्ञानमय भावो करे।
अरु उन हि निज अज्ञानकृत भावों को भोगा भी करे॥
ज्ञानी हुवा जब आत्मा तब ज्ञानमय भावो करे।
अरु उन हि निज के ज्ञानकृत भावों को भोगा भी करे॥
दोनों दशा में आत्मा निज को करे अरु भोगवे।
परद्रव्यकृत तो कोई भावों को करे ना भोगवे॥
वस्तु का ऐसा धर्म है इसको ही निश्चय जिन कहें।
है अटल वस्तु नियम ये, रे शिष्य यूं तू जान ले॥

चौथा नयाभास ५८५–५८६

अयमपि च नयाभासो भवति मिथो बोध्यबोधसम्बन्धः।
ज्ञानं ज्ञेयगतं वा ज्ञानगतं ज्ञेयमेतदेव यथा॥५८५॥

अर्थ—यह भी नयाभास है कि ज्ञान और ज्ञेय का परस्पर बोध्य बोधक सम्बन्ध है अर्थात् ज्ञान ज्ञेयगत है और यह ज्ञेय भी ज्ञानगत है (ज्ञान ज्ञेय में चला जाता है या ज्ञेय ज्ञान में आ जाता है ऐसा मानना नयाभास है)।

भावार्थ—ज्ञान का स्वभाव है कि वह हरएक पदार्थ को जाने परन्तु किसी पदार्थ को जानता हुवा भी वह सदा अपने ही स्वरूप में स्थिर रहता है। वह पदार्थों में नहीं चला जाता है और न वह उनका धर्म ही हो जाता हे। तथा न पदार्थ का कुछ अंश ही ज्ञान में आता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो कोई इसमें विरुद्ध मानते हैं वे नयाभास अर्थात् मिथ्याज्ञान से ग्रसित हैं।

चक्षू रूपं पश्यति रूपगतं तन्न चक्षुरेव यथा।
ज्ञानं ज्ञेयमवैति च ज्ञेयगतं वा न भवति तज्ज्ञानम् ॥५८६॥

अर्थ—जिस प्रकार चक्षु रूप को देखता है परन्तु वह रूप में चला नहीं जाता है अथवा रूप का वह धर्म नहीं हो जाता है किन्तु चक्षु चक्षु ही रहता है। उसी प्रकार ज्ञान ज्ञेयपदार्थ को जानता है परन्तु वह ज्ञान ज्ञेय में नहीं जाता है अथवा उसका धर्म नहीं हो जाता है किन्तु ज्ञान ज्ञान ही रहता है। उसी प्रकार ज्ञेय भी कहीं आंख में नहीं आ जाता है अथवा आंख का धर्म नहीं बन जाता है। ज्ञेय का फोटो भी नहीं आता है फिर ज्ञेय का आना तो कहां रहा। वह तो अपने स्वकाल की योग्यता से जानता है।

इत्यादिकाश्च बहवः सन्ति यथालक्षणा नयाभासाः।
तेषामयमुद्देशो भवति विलक्ष्यो नयान्नयाभासः ॥५८७॥

अर्थ—इस प्रकार ये चार नयाभास कहे। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से नयाभास हैं जोकि वैसे ही लक्षणों वाले हैं। उन सब नयाभासों का उद्देश्य (आशय) नय से विरुद्ध है। इसलिये वे नयाभास कहे जाते हैं। अर्थात् जीव का पर द्रव्यों के साथ एक रूप सम्बन्ध बतलाने वाले सब कथन नयाभास हैं।

भावार्थ—नयों का जो स्वरूप कहा गया है उससे नयाभासों का स्वरूप विरुद्ध है। इसलिये जो समीचीन नय है उसे नय कहते हैं और मिथ्या नय को नयाभास कहते हैं।

नोट—५६५ से ५८७ तक नयाभासों का विषय ग्रन्थकार ने ज्यों का त्यों श्री समयसार जी गा० ८४ से ८६ तक तथा ९८ से १०८ तथा उनके कलशों पर से लिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५६६ से ५८७ तक का सार

प्रथम नयाभास

(१) जीव को वर्णादियुक्त मानना (५६३)।

(२) मनुष्यादि शरीर हैं—वह ही जीव हैं, ऐसा मानना (५६७-६८)।

(३) मनुष्य शरीर जीव के साथ एक क्षेत्रावगाह रूप से है, इसलिये एक है—ऐसा मानना (५६९)।

(४) शरीर और आत्मा को बंध्य-बंधक भाव मानना (५७०)।

(५) शरीर और आत्मा को निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध प्रयोजनवान् नहीं हैं क्योंकि स्वयं और स्वतः परिणमित होने वाली वस्तु को पर के निमित्त से क्या लाभ ? कोई लाभ नहीं (५७१)।

दूसरा नयाभास

(१) जीव और जड़ कर्म भिन्न-भिन्न द्रव्य होने से तथा उनके परस्पर गुणों का (पर्यायों का) संक्रमण न हो सकने से जीव कर्म नोकर्म (शारीरिक ज्ञानावरणादिक या किसी मूर्तिक वस्तु का कर्ता-भोक्ता नहीं हो सकता, तथापि उसमें नय लागू करना वह नयाभास है—मिथ्या नय है (५७२)।

(२) गुण संक्रमण बिना ही यदि आत्मा कर्मादि का कर्ता-भोक्ता हो तो सर्व पदार्थों में सर्वसंकर दोष तथा सर्वशून्य दोष आवेगा। (५७३-५७४)

(३) मूर्तिमान ऐसा पुद्गल द्रव्य अपने आप ही जीव की अशुद्ध परिणति की उपस्थिति में कर्मरूप परिणमित हो जाता है, यही इस विषय में भ्रम का कारण है (५७५)।

(४) जो कोई भी कर्ता-भोक्ता होता है वह अपने भाव का होता है। जिस प्रकार कुम्हार वास्तव में अपने भाव का कर्ता-भोक्ता है किन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परभाव रूप जो घड़ा–उसका कर्ता-भोक्ता वह कदापि नहीं हो सकता (५७७)।

(५) कुम्हार घड़े का कर्ता है–ऐसा लोक व्यवहार नयाभास है (५७६)।

तीसरे नयाभास का स्वरूप

(१) जो बंध को भी प्राप्त नहीं हैं ऐसे पर पदार्थों में भी अन्य पदार्थ को अन्य पदार्थ का कर्ता भोक्ता मानना वह नयाभास है।

(२) गृह, धन, धान्य, स्त्री, पुत्रादि को जीव स्वयं करता है और उनका उपभोग करता है–ऐसा मानना वह नयाभास है (५८०-८१)।

नोट—जीव का व्यवहार पर पदार्थों में नहीं होता, किन्तु अपने में ही होता है। जीव को पर द्रव्य के साथ सम्बन्ध बतलाने वाले सभी कथन नयाभास हैं।

चौथे नयाभास का स्वरूप

(१) ज्ञेय-ज्ञायक उपचार सम्बन्ध के कारण ज्ञान को ज्ञेयगत कहना तथा ज्ञेय को ज्ञानगत कहना भी नयाभास है (५८५)।

नयाभासों का निरूपण पूरा हुवा

नोट—इस प्रकार प्रकरणवश कुछ नयाभासों को बताकर ग्रन्थकार अब फिर से अपने प्रकृत विषय पर आते हैं और वास्तविक (सम्यक्) व्यवहार नयों को बतलाते हैं:—

पांचवां अवान्तर अधिकार

वास्तविक व्यवहार नयों का स्वरूप (५८८ से ५९६ तक)

शंका

ननु सर्वतो नयास्ते किं नामानोऽथ वा कियन्तश्च।
कथमिव मिथ्यार्थास्ते कथमिव ते सन्ति सम्यगुपदेश्याः ॥५८८॥

अर्थ—सम्पूर्ण नयों के क्या-क्या नाम हैं और वे कितने हैं तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कैसे वे मिथ्या अर्थ को विषय करने वाले हो जाते हैं और कैसे यथार्थ पदार्थ को विषय करने वाले होते हैं ?

नय कितने हैं इसका उत्तर

सत्यं यावदनन्ताः सन्ति गुणा वस्तुतो विशेषाख्याः ।
तावन्तो नयवादा वचोविलासा विकल्पाढ्याः ॥५८९॥

अर्थ—ठीक है। परमार्थ से जितने भी वस्तु के विशेष संज्ञा वाले अनन्त गुण हैं उतने ही नयवाद हैं अर्थात् उतने ही वचनविवक्षा हैं (द्रव्यनय) और उतने ही विकल्प के स्थान हैं (भावनय)। (जैसे जीव में अस्तित्व गुण को कहने वाला अस्तित्व नय, ज्ञान गुण को कहने वाला ज्ञान नय है। इत्यादि अनन्त पर्यन्त जानना)।

भावार्थ—यहां पर केवल गुणों का उल्लेख इसलिए किया गया है कि यहां पर केवल शुद्ध पदार्थ का प्रकरण है और शुद्ध पदार्थ के प्रकरण में गुण को ही नय कहते हैं। पर्याय के विभाव का प्रसंग ही नहीं है। उसको नय कहने का प्रश्न ही नहीं है। स्वभाव पर्याय गुण में समाविष्ट है। और पर द्रव्य की तो नयाभास होती हैं यह पहले कह ही आये हैं। विशेष आगे सार में देखिये।

ये सम्यक् मिथ्या कैसे होते हैं इसका उत्तर ५९०-९१

अपि निरपेक्षा मिथ्यास्ते एव सापेक्षका नयाः सम्यक् ।
अविनाभावत्वे सति सामान्यविशेषयोश्च सापेक्षात् ॥५९०॥

अर्थ—वे परस्पर निरक्षेप रूप से विवक्षित होने पर मिथ्यानय कहे जाते हैं और वे ही परस्पर सापेक्ष रूप मे विवक्षित होने पर सम्यक् (सच्चे-समीचीन) नय कहे जाते हैं (क्योंकि पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है) अतः सामान्य और विशेष इन दोनों में अविनाभाव होने से परस्पर सापेक्षता हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—निरपेक्ष नय को मिथ्या इसलिये कहा गया है कि नय पदार्थ के विवक्षित अंश को ही विवेचन करता है और निरपेक्ष अवस्था में वह विवेचन एकान्तरूप पड़ता है परन्तु पदार्थ उतना ही नहीं है जितना कि वह विवेचित किया गया है उसके अन्य भी अनन्त धर्म हैं। इसलिये वह एकान्त विवेचन या ज्ञान मिथ्या है। यदि अन्य धर्मों की अपेक्षा रखकर किसी नय का प्रयोग किया जाता है तो वह समीचीन प्रयोग है क्योंकि वह सापेक्ष नय वस्तु के एक अंश को तो कहता है परन्तु पदार्थ को उस अंश रूप ही नहीं समझाया जाता है। इसलिये सापेक्ष नय सम्यक् हैं। निरपेक्ष नय मिथ्या हैं।

सापेक्षत्वं नियमादविनाभावस्त्वनन्यथासिद्धः ।
अविनाभावोऽपि यथा येन विना जायते न तत्सिद्धिः ॥५९१॥

अर्थ—सापेक्षपना नियम से अविनाभाव को कहते हैं क्योंकि अविनाभाव के बिना सापेक्षत्व की सिद्धि नहीं हो सकती। अविनाभाव उसे कहते हैं कि जिसके बिना उसकी सिद्धि न हो।

भावार्थ—सामान्य के बिना विशेष नहीं सिद्ध होता है और विशेष के बिना सामान्य नहीं सिद्ध होता है। अतएव इन दोनों में अविनाभाव है। परस्पर अविनाभाव होने के कारण ही दोनों में सापेक्षता है।

नयों के नाम क्या हैं इसका उत्तर ५९२ से ५९५ तक

अस्त्युक्तो यस्य सतो यन्नामा यो गुणो विशेषात्मा ।
तत्पर्यायविशिष्टास्तन्नामानो नया यथाम्नायात् ॥५९२॥

अर्थ—जिस द्रव्य का जिस २ नाम वाला जो २ विशेष गुण कहा गया है उस २ अंशविशिष्ट अर्थात् उस २ गुण को विषय करने वाला नय भी आगम के अनुसार उसी २ नाम से कहा जाता है।

भावार्थ—इस प्रकार एक द्रव्य में जितने भी गुण रूप अंश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवक्षित किये जाते हैं वे जिस २ नाम वाले हैं उन २ को प्रतिपादन करने वाले या जानने वाले नय भी उन्हीं २ नामों से कहे जाते हैं।

दृष्टान्त–१

अस्तित्वं नाम गुणः स्यादिति साधारणः सतस्तस्य ।
तत्पर्यायश्च नयः समासतोऽस्तित्वनय इति वा ॥५९३॥

अर्थ—जैसे उस सत् का अस्तित्व नाम का साधारण गुण है। इसलिये उस सत् के उस अस्तित्व अंश को विषय करने वाला नय भी संक्षेप से अस्तित्व नय कहलाता है।

दृष्टांत–२

कर्तृत्वं जीवगुणोऽस्त्वथ वैभाविकोऽथवा भावः ।
तत्पर्यायविशिष्टः कर्तृत्वनयो यथा नाम ॥५९४॥

अर्थ—इसी प्रकार जीव का कर्तृत्व नाम का गुण है अथवा उसको वैभाविक भाव (वैभाविक शक्ति-गुण) भी कहते हैं। इसलिये उस अंश विशिष्ट को अर्थात् उस कर्तृत्व गुण को विषय करने वाला कर्तृत्व नाम का नय कहलाता है।

भावार्थ—पहले जीव का एक साधारण गुण का दृष्टांत दिया था, अब एक असाधारण गुण का दृष्टांत दिया है। किसी आगम में कर्तृत्व नामक गुण लिखा है तो किसी आगम में उसी को वैभाविक शक्ति के नाम से लिखा है। दोनों पर्यायवाची हैं। इसका विशद विवेचन दूसरे अध्याय के प्रारम्भ में तथा अन्त में है। ये खास समझने वाला गुण है। इसलिये ग्रंथकार ने इसे विशेष उपयोगी समझकर जान कर ज्ञान का दृष्टांत न देकर इसका दृष्टांत दिया है।

अनया परिपाट्या किल नयचक्रं यावदस्ति बोद्धव्यं ।
एकैकं धर्मं प्रति नयोऽपि चैकैक एव भवति यतः ॥५९५॥

अर्थ—इसी परिपाटी से जितना भी नयचक्र है उसे जान लेना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिये; क्योंकि वस्तु के एक २ धर्म (गुण) की अपेक्षा एक २ ही नय होता है।

ये सब व्यवहार नय ही हैं।

सोदाहरणो यावान्नयो विशेषणविशेष्यरूपः स्यात्।
व्यवहारापरनामा पर्यायार्थो नयो न द्रव्यार्थः ॥५९६॥

अर्थ— (ऊपर कहा हुआ) उदाहरण सहित जितना भी विशेषण विशेष्य रूप नय है वह सब पर्यायार्थिक नय है। उसी का दूसरा नाम व्यवहार नय है। उसको द्रव्यार्थिक नय नहीं कहते।

५८८ से ५९६ तक का सार

द्रव्य किसे कहते हैं ? उत्तर यही है कि अनन्त गुणों के समुदाय को द्रव्य कहते हैं। बस अनन्त गुणों का समुदाय रूप जो अखण्ड वह एक वस्तु है। उसी को सामान्य कहते हैं उसको विषय करने वाला द्रव्यार्थिक नय है और जिन अनन्त गुणों का वह समुदाय है उन अनन्त गुणों को निरूपण करने वाले अनन्त नय हैं। एक २ गुण को विषय करने वाला एक एक नय है। जो गुण का नाम है वही नय का नाम है। ये सब नय पर्यायार्थिक नय या व्यवहार नय कहलाते हैं क्योंकि ये एक २ अंश को विषय करते हैं। अब क्योंकि ये निरूपण तो अपने२ गुण को भिन्न २ करते हैं और हैं वे सब गुण अभिन्न। अतः वे नय परस्पर सापेक्ष अर्थात् उसी प्रकार जुड़े हुये हैं जैसे द्रव्य में गुण हैं। इसलिये सापेक्ष कहने वाले हैं तो सम्यक् (सच्चे) हैं अन्यथा मिथ्या हैं क्योंकि वे कहते भिन्न २ हैं और वस्तु अभिन्न है।

जो अखण्ड समुदाय है वही तो भिन्न २ अनन्त गुण हैं। और जो भिन्न २ अनन्त गुण हैं वही तो अखण्ड समुदाय है। समुदाय अर्थात् सामान्य द्रव्य, गुण अर्थात् विशेष-पर्याय इसी का नाम सामान्य विशेष में सापेक्षता-अविनाभाव-परस्पर अनन्यथा सिद्धि है। ये एक दूसरे के बिना सिद्ध नहीं हो सकते। आपको यह शंका हो सकती है कि इसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राग तो आया ही नहीं। उसका उत्तर यह है कि राग तो जीव में असद्भूत है। उसका यहां प्रकरण नहीं है। यहां तो शुद्ध ६ द्रव्यों की बात है। शुद्ध जीवास्तिकाय का प्रकरण है। शुद्ध जीवास्तिकाय अखण्ड निश्चय नय का विषय है। उसका एक एक गुण व्यवहार का विषय है। वे ही वास्तविक व्यवहार नय हैं क्योंकि वे व्यवहार नय तो द्रव्य में सदा रहते हैं। कहीं राग द्रव्य में सदा नहीं रहता जिसे वास्तविक व्यवहार नय कहा जाय। इसलिये इस प्रकरण का नाम वास्तविक व्यवहार नयों का निरूपण है। यहां राग को भी व्यवहार नय नहीं कहा है फिर पर वस्तु की तो बात ही क्या है।

आपको यह भी शंका हो सकती है कि व्यवहार नयों का विवेचन तो पहले विशद रूप से कर आये हैं। यह अब फिर क्या है या उसमें इसमें क्या अन्तर है या इनमें कौनसी नयों को व्यवहार नय समझें। अगर ये वास्तविक हैं तो क्या वे अवास्तविक थीं। उत्तर यह कि वे विभाव सहित एक द्रव्य के चतुष्टय की अपेक्षा नय थी और ये विभाव रहित शुद्ध द्रव्य की नय हैं। वे केवल जीव पुद्गल में लागू हो सकती थी। ये छहों द्रव्यों में लागू होती हैं। ग्रन्थकार की करुणा तो हर प्रकार से द्रव्य के स्वरूप पर प्रकाश डालने की है ताकि शिष्य को हस्तामलक की तरह पदार्थ झलके लगे। पदार्थ अनुभव में आने पर सभी निरर्थक हैं क्योंकि अनुभव तो नयातीत है यह आगे कहेंगे।

वास्तविक व्यवहार नयों का निरूपण समाप्त हुआ।

छटा अवान्तर अधिकार

निश्चय नय का निरूपण ५९७ से ६६३ तक

इस अधिकार में निम्नलिखित विषयों का स्पष्टीकरण किया गया है।

(१) निश्चय नय का लक्षण तथा वाच्य पदार्थ ५९८ से ५९९ = २
(२) निश्चय नय विकल्पात्मक है ६०० से ६१० = ११
(३) निश्चय नय उदाहरण रहित है ६११ से ६२५ = १५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) व्यवहार प्रतिषेध्य है, निश्चय प्रतिषेधक है ६२६ से ६३६ = ११
(५) व्यवहार नय की स्थापना ६३७ से ६४१ = ५
(६) निश्चय नय का वाच्य विषय ६४२ से ६४४ = ३
(७) निश्चयनयावलम्बी भी परसमयी है केवल नयातीत पुरुष स्वात्मानुभूति रूप है इसकी सिद्धि ६४५ से ६५३ = ९
(८) दोनों नयों की परस्पर सापेक्षता तथा उनके अवलम्बन करने वाले मिथ्यादृष्टि ६५४ से ६५५ = २
(९) निश्चय नय अनेक नहीं—एक है ६५६ से ६६१ = ६
(१०) दोनों नयों की सापेक्षता और उनके जानने का फल ६६२ = १
(११) निश्चय नय की सफलता ६६३ = १

प्रतिज्ञा

ननु चोक्तलक्षण इति यदि न द्रव्यार्थिको नयो नियमात् ।
कोऽसौ द्रव्यार्थिक इति पृष्टास्तच्चिन्हमाहुराचार्याः ॥५९७॥

अर्थ—यदि उपर्युक्त लक्षण वाला द्रव्यार्थिक नय वास्तव में नहीं है तो फिर द्रव्यार्थिक नय कौन है ? इस प्रकार किसी ने आचार्य से प्रश्न किया । सो अब आचार्य उस द्रव्यार्थिक नय का लक्षण कहते हैं ।

भावार्थ— यदि सोदाहरण विशेषण विशेष्य रूप सब ही नय नियम से पर्यायार्थिक नय (व्यवहार नय) हैं–द्रव्यार्थिक नहीं (निश्चय नय नहीं) तो बतलाईये द्रव्यार्थिक नय (निश्चय नय) किसे कहते हैं ?

निश्चय नय का लक्षण तथा वाच्य पदार्थ

व्यवहारः प्रतिषेध्यस्तस्य प्रतिषेधकश्च परमार्थः ।
व्यवहारप्रतिषेधः स एव निश्चयनयस्य वाच्यः स्यात् ॥५९८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—व्यवहार प्रतिषेध्य है अर्थात् निषेध करने योग्य है और उसका प्रतिषेधक अर्थात् निषेध करने वाला निश्चय है। जो व्यवहार का निषेध है वह भी निश्चय नय का वाच्य-अर्थ है। अन्तर इतना है कि वह भेद रूप नहीं अभेद रूप है।

भावार्थ—द्रव्य शब्द का शब्दार्थ अन्वय या सामान्य होता है। इससे सिद्ध होता है कि द्रव्यार्थिक नय सत् में किसी प्रकार का भेद किये बिना उसे सामान्य रूप से ही ग्रहण करता है। यदि वस्तु का विधि-मुखेन कथन किया जाता है तो वह धर्म विशेष द्वारा ही हो सकता है किन्तु धर्मविशेष द्वारा वस्तु का वाचक द्रव्यार्थिक नय न होकर पर्यायार्थिक नय है। इससे ग्रन्थकार ने पर्यायार्थिक नय को विशेषण विशेष्य रूप और द्रव्यार्थिक नय को इसका निषेधक बतलाया है। इस प्रकार से विचार करने पर "जीव है या जीव चैतन्य गुणवाला है" व्यवहार नय के उदाहरण ठहरते हैं और 'न तथा' यह निश्चय नय का उदाहरण ठहरता है क्योंकि इसके सिवाय अन्य प्रकार से निश्चय नय के विषय का निर्देश नहीं किया जा सकता।

इसी का स्पष्टीकरण

व्यवहारः स यथा स्यात्सद्द्रव्यं ज्ञानवांश्च जीवो वा।
नेत्येतावान्मात्रो भवति स निश्चयनयो नयाधिपतिः ॥५९९॥

अर्थ—व्यवहार नय इस प्रकार विवेचन करता है अथवा जानता है कि द्रव्य सत् रूप है। निश्चय नय बतलाता है कि नहीं। व्यवहार नय बतलाता है कि जीव ज्ञानवान है निश्चय नय बतलाता है कि नहीं। इस प्रकार जो "नेति" ऐसा नहीं है अर्थात् निषेध को विषय करने वाला है वह निश्चय नय है और वही सब नयों का शिरोमणि है।

अर्थ—व्यवहार नय ने द्रव्य को सत्स्वरूप बतलाया है परन्तु निश्चय नय इसका निषेध करता है कि नहीं अर्थात् पदार्थ ऐसा नहीं है कारण कि सत् नाम अस्तित्व गुण का है। पदार्थ केवल अस्तित्व गुण स्वरूप तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं है किन्तु अनन्त गुणात्मक है। इसलिये पदार्थ को 'सत्' बतलाना ठीक नहीं है। इसलिये निश्चय नय उसका निषेध करता है। इसी प्रकार जीव को ज्ञानवान् कहना यह भी व्यवहार नय का विषय है। निश्चय नय इसका निषेध करता है कि नहीं अर्थात् जीव ऐसा नहीं है क्योंकि जीव अनन्त गुणों का अखण्ड पिण्ड है। इसलिये वे अनन्त गुण अभिन्न प्रदेशी हैं। अभिन्नता में गुण गुणी का भेद करना ही मिथ्या है। इसलिए निश्चय नय उसका निषेध करता है। निश्चय नय व्यवहार के समान किसी पदार्थ का विवेचन नहीं करता है किन्तु जो कुछ व्यवहार नय से विवेचन किया जाता है अथवा भेद रूप जाना जाता है उस का निषेध करता है। इस प्रकार उसका वाच्यार्थ अभेद का समर्थन बैठता है। इसको नयाधिपति इसलिये कहा है कि भेद रूप कहने वाले सब झूठे हैं और सच्चा तो यह एक ही है जो अभेद रूप को अभेद रूप दर्शाता है तथा मोक्षमार्ग इसी के अधीन है।

निश्चय नय विकल्पात्मक है इसकी सिद्धि ६०० से ६१० तक

शंका

ननु चोक्तं लक्षणमिह नयोऽस्ति सर्वोऽपि किल विकल्पात्मा।
तदिह विकल्पाभावात् कथमस्य नयत्वमिदमिति चेत् ॥६००॥

अर्थ—यह बात पहले (२०६ में) कही जा चुकी है कि सभी नय विकल्पात्मक ही होते हैं क्योंकि नय का लक्षण ही विकल्प है (फिर इस निश्चय नय में विकल्प तो कुछ पड़ता ही नहीं है क्योंकि उक्त नय केवल निषेधात्मक है) इसलिये विकल्प का अभाव होने से इस नय को नयपना ही कैसे आवेगा ? अर्थात् इस नय में नय का लक्षण न लाने से नयपना कैसे है ?

समाधान ६०१ से ६१० तक

तन्न यतोऽस्ति नयत्वं 'नेति' यथा लक्षितस्य पक्षत्वात्।
पक्षग्राही च नयः पक्षस्य विकल्पमात्रत्वात् ॥६०१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—उपर्युक्त शंका ठीक नहीं है। निश्चय नय में नयपना है क्योंकि निश्चय नय में भी "नेति" (निषेधात्मक) यह पक्ष आता ही है वह निषेध ही उसका एक पक्ष है और पक्ष का ग्राहक ही नय होता है और पक्ष विकल्पात्मक (राग सहित) ही होता है। इसलिये विकल्प का अभाव बतलाकर निश्चय नय को नय नहीं मानना युक्त नहीं है।

भावार्थ—नय का लक्षण विकल्प बतलाया गया है। द्रव्यार्थिक नय में निषेध रूप विकल्प पड़ता ही है। अथवा किसी एक पक्ष के ग्रहण करने वाले ज्ञान को अथवा उसके वाचक वाच्य को भी नय कहते हैं। निश्चय नय में निषेध रूप पक्ष का ग्रहण होता है। जिस प्रकार व्यवहार नय किसी धर्म का प्रतिपादन करने से विकल्पात्मक है उसी प्रकार व्यवहार नय के विषयभूत पदार्थ को निषेध करने रूप का प्रतिपादन करने से निश्चय नय भी विकल्पात्मक ही है। इसलिये नय का लक्षण निश्चय नय में सुघटित ही है।

प्रतिषेध्यो विधिरूपो भवति विकल्पः स्वयं विकल्पत्वात्।
प्रतिषेधको विकल्पो भवति तथा सः स्वयं निषेधात्मा ॥६०२॥

अर्थ—जिस प्रकार प्रतिषेध्य अर्थात् व्यवहार नय स्वयं विकल्पात्मक होने से विधि रूप विकल्प है। उसी प्रकार वह प्रतिषेधक अर्थात् निश्चय नय भी स्वयं निषेध रूप विकल्प है।

भावार्थ—जैसे प्रतिषेध्य में विधिरूप पक्ष होने से वह विकल्पात्मक है वैसे प्रतिषेधक में निषेधरूप पक्ष होने से वह भी विकल्पात्मक है।

इसी का स्पष्टीकरण ६०३, ६०४, ६०५ तीन इकट्ठे

तल्लक्षणमपि च यथा स्यादुपयोगो विकल्प एवेति।
अर्थानुपयोगः किल वाचकं इह निर्विकल्पस्य ॥६०३॥

अर्थ—प्रतिषेधक भी विकल्पात्मक है उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है:—पदार्थ का उपयोग ही तो विकल्प कहा जाता है तथा पदार्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का अनुपयोग निर्विकल्प कहा जाता है।

अर्थाकृतिपरिणमनं ज्ञानस्य स्यात् किलोपयोग इति।
नार्थाकृतिपरिणमनं तस्य स्यादनुपयोग एव यथा ॥६०४॥

अर्थ—तथा ज्ञान का पदार्थाकार परिणमन होना ही उपयोग कहलाता है और उस ज्ञान का पदार्थाकार परिणमन न होना अनुपयोग कहलाता है।

'नेति' निषेधात्मा यो नानुपयोगः सबोधपक्षत्वात्।
अर्थाकारेण बिना 'नेति' निषेधावबोधशून्यत्वात् ॥६०५॥

अर्थ—जब उपयोग अनुपयोग की ऐसी व्यवस्था है तब द्रव्यार्थिक नय में 'नेति' इत्याकारक जो निषेधात्मक बोध है वह भी निषेध ज्ञानरूप पक्ष से विशिष्ट होने से अनुपयोग नहीं कहा जा सकता किन्तु उपयोग ही है क्योंकि उपयोग उसी को कहते हैं कि जिस ज्ञान में पदार्थाकार परिणमन हो। यहां पर भी अर्थाकार परिणमन के बिना "नेति" इत्याकारक निषेधात्मक ज्ञान नहीं हो सकता है। परन्तु द्रव्यार्थिक नय में निषेधरूप बोध होता है। इसलिये निषेधाकार परिणमन होने से द्रव्यार्थिक नय भी उपयोगात्मक है और उपयोग को ही विकल्प कहते हैं।

भावार्थ ६०३, ६०४, ६०५—यहां रागसहित के ज्ञानव्यापार को उपयोग तथा निर्विकल्प (रागरहित) ज्ञान व्यापार को अनुपयोग कहा है। "जीव का गुण ज्ञान है" यह अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय का विषय है। ऐसा श्लोक ५३६ में कहा है। वहां वह विधिरूप विकल्पात्मक रागसहित ज्ञान है। व्यवहार नय प्रतिषेध्य है और निश्चय नय प्रतिषेधक है। इसलिए निश्चय नय "ज्ञान जीव का गुण है" इस विधि वाक्य का निषेध करके कहता है कि "जीव ज्ञान गुण जितना ही नहीं है"। उपयोग का अर्थ 'अर्थाकार अर्थात् राग सहित पदार्थ का जानने वाला ज्ञान व्यापार" यहां समझना। निश्चय नय के विषय का राग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहित ज्ञान करते "जीव ज्ञान गुण जितना ही नहीं है" ऐसा विकल्प उठता है। इसलिये यह नय निर्विकल्प नहीं है। उपयोग का अर्थ यह है कि एक पदार्थ से खिसक कर दूसरे पदार्थ की तरफ जो चैतन्य का व्यापार जाता है 'उपयोग' कहते हैं। इसलिये उपयोग के समय राग अवश्य होता ही है। एक पदार्थ से खिसक कर दूसरे पदार्थ की तरफ (जाननेपने रूप) चैतन्य का व्यापार केवली भगवान के होता नहीं है इसलिये उनके उपयोग होता नहीं है। उनके 'उपयोग' मात्र उपचार से कहने में आता है। रागसहित ज्ञान व्यापार को सविकल्प उपयोग तथा रागरहित ज्ञान व्यापार को अनुपयोग यहां कहा है। निर्विकल्प ज्ञान छद्मस्थ को धर्म और शुक्लध्यान में होता है।

जीवो ज्ञानगुणः स्यादर्थालोकं बिना नयो नासौ।
नेति निषेधात्मत्वादर्थालोकं बिना नयो नासौ ॥६०६॥

अर्थ—जिस प्रकार जीव ज्ञान गुणवाला है यह नय पदार्थ का प्रतिभास हुये बिना नहीं हो सकता, इसी प्रकार निषेधात्मक होने से 'नेति' ऐसे आकार वाला यह नय भी पदार्थ का प्रतिभास हुये बिना नहीं हो सकता।

स यथा शक्तिविशेषं समीक्ष्य पक्षश्चिदात्मको जीवः।
न तथेत्यपि पक्षः स्यादभिन्नदेशादिकं समीक्ष्य पुनः ॥६०७॥

अर्थ—उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है:—जीव की विशेष शक्ति को अर्थात् ज्ञान शक्ति को देखकर यह कहना या समझना कि "जीव चिदात्मक है" जिस प्रकार यह पक्ष है. उसी प्रकार अभिन्न-देशादिक को देखकर अर्थात् जीव के अकेले ज्ञान गुण पर ध्यान न देकर सर्व गुणों को देखकर यह कहना या समझना "कि वैसा नहीं है" अर्थात् जीव अकेला मात्र ज्ञान गुण वाला ही नहीं है, यह भी तो पक्ष है। (पक्षग्राहिता उभयत्र समान है अतः दोनों नय हैं और विकल्पात्मक हैं)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—सारांश यह है कि "जीव ज्ञान गुण वाला है" इस व्यवहार नय में जिस प्रकार जीव के ज्ञान गुण के अवलम्बन से जीव को चिदात्मक कहा—यह पक्ष है उसी प्रकार निश्चिय नय में "जीव अकेला मात्र ज्ञानगुण वाला ही नहीं है" इसलिये जीव के ज्ञान रूप विशेष गुण सिवाय 'सामान्य धर्म' को अवलम्बन करके जीव की मात्र ज्ञानात्मकता का निषेध करना—यह भी पक्ष है। जो अखण्ड का समर्थक है।

अर्थालोकविकल्पः स्यादुभयत्राविशेषतोऽपि यतः ।
न तथेत्यस्य नयत्वं स्यादिह पक्षस्य लक्षकत्वाच्च ॥६०८॥

अर्थ—क्योंकि दोनों नयों में सामान्य रूप से अर्थ प्रतिभास रूप विकल्प है इसलिये "वैसा नहीं है" इत्याकारक निषेध पक्ष को विषय करने से निश्चय नय में नयपना है ही कारण उसने एक निषेध पक्ष का अवलम्बन किया है।

भावार्थ—व्यवहार और निश्चय इन दोनों नयों में अर्थालोक-विकल्प (अर्थ प्रतिभास रूप विकल्प) समान है। इसलिये 'न तथा' इस आकार वाला निश्चय नय भी पक्ष का ग्राही ज्ञान का रागांश होने से उसमें नयपना सिद्ध हो जाता है।

एकाङ्गग्रहणादिति पक्षस्य स्यादिहांशधर्मत्वम् ।
न तथेति द्रव्यार्थिकनयोऽस्ति मूलं यथा नयत्वस्य ॥६०९॥

अर्थ—पक्ष उसी को कहते हैं जो एक अंग को ग्रहण करता है। इसलिये 'न तथा' इस पक्ष में भी अंशधर्मता है ही। अतएव 'न तथा' को विषय करने वाला द्रव्यार्थिक नय एक अंश को विषय करने से पक्षात्मक है जोकि नयपने का मूल है।

भावार्थ—नय सामान्य का लक्षण विकल्प है और निश्चय नय में 'नेति' विकल्प अखण्ड पक्ष का सूचक मौजूद है इसलिये उसमें नय का लक्षण होने से नयपना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकाङ्गत्वमसिद्धं न 'नेति' निश्चयनयस्य तस्य पुनः ।
वस्तुनि शक्तिविशेषो यथा तथा तदविशेषशक्तित्वात् ॥६१०॥

अर्थ—'नेति' इस निषेध को विषय करने वाले निश्चय नय में एकांगता असिद्ध नहीं है किन्तु सिद्ध ही है। जिस प्रकार वस्तु में विशेष (भेद) शक्ति एक शक्ति होती है, उसी प्रकार उसमें उस विशेष को नकार करती सामान्य शक्ति (अभेद शक्ति) भी उसका एक अंग है अर्थात् वस्तु भेदाभेदात्मक है। जिस प्रकार भेद एक अंग है उसी प्रकार अभेद भी एक अंग है।

भावार्थ—पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है। वही प्रमाण का विषय है तथा सामान्यांश द्रव्यार्थिक नय का विषय है। विशेषांश पर्यायार्थिकनय का विषय है। इसलिये विशेष के निषेध रूप सामान्यांश को विषय करने वाला निश्चय नय में एकांगता सिद्ध ही है।

५९७ से ६१० तक का सार

पहले ५८८ से ५९६ तक यह सिद्ध किया जा चुका है कि किसी एक शुद्ध द्रव्य को एक एक गुण भेद से निरूपण करने वाले वास्तविक व्यवहार नय हैं। अब यह कहते हैं कि उसको भेद रूप निरूपण न करके अभेदरूप निरूपण करने वाला निश्चय नय है। जगत् में अभेद अखण्ड पूर्ण वस्तु के स्वरूप को दिखलाने वाला कोई शब्द नहीं है। अतः जो कुछ शब्द कहता है, वह भेद करके उदाहरण सहित विशेषण विशेष्य सहित निरूपण करता है। वस्तु का स्वरूप तो ठीक वैसा ही है अन्तर केवल इतना ही है कि वह भेद करके निरूपण करता है और वस्तु अभेद है। इस लिये व्यवहार नय जो कुछ कहता है उसके समक्ष निश्चय कहता है कि है तो ऐसा ही पर भेद रूप नहीं-अभेद रूप है इसको "न इति = नेति ऐसा नहीं है- भेद रूप नहीं है अर्थात् अभेद अखण्ड शुद्ध है" यह निश्चय का लक्षण है यह "नेति" इस निषेध रूप विकल्प को लिये हुये है : सामान्य पक्ष का-अभेद पक्ष का सूचक है—भेद का-विशेष का—व्यवहार का निषेधक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अगली भूमिका—इस प्रकार श्लोक ६०० से ६१० तक निश्चय नय में नेति' विकल्पपने की सिद्धि करके आगे ६२५ तक ऊहापोह पूर्वक निश्चय नय को उदाहरण रहित सिद्ध करते हैं।

निश्चय नय उदाहरण रहित है–६११ से ६२५ तक

शंका ६११ से ६१२ तक

ननु च व्यवहारनयः सोदाहरणो यथा तथाऽयमपि ।
भवतु तदा को दोषो ज्ञानविकल्पाविशेषतो न्यायात् ॥६११॥

शंका—जिस प्रकार व्यवहार नय उदाहरण सहित होता है। उस प्रकार यह निश्चय नय भी उदाहरण सहित माना जाय तो क्या दोष आता है ? क्योंकि ज्ञान विकल्प दोनों में समान रूप से पाया जाता है (जब दोनों में विकल्प है तो दोनों उदाहरण सहित होने ही चाहिये)?

शंका चालू

स यथा व्यवहारनयः सदनेकं स्याच्चिदात्मको जीवः।
तदितरनयः स्वपक्षं वदतु सदेकं चिदात्मवत्त्विति चेत् ॥६१२॥

अर्थ—स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि जिस प्रकार व्यवहार नय सत् को अनेक बतलाता है। जीव को चिदात्मक बतलाता है (यह व्यवहार नय का उदाहरण है) उसी प्रकार निश्चय नय भी 'सत् एक है, जीव चित् ही है' इस प्रकार अपने पक्ष को कहे (यह निश्चय का उदाहरण है)। (ऐसा कहने से निश्चय नय उदाहरण सहित भी हो जाता है और व्यवहार नय से भिन्न भी हो जाता है) यदि ऐसा माने तो ?

समाधान ६१३ से ६१८ तक

न यतः सङ्करदोषो भवति तथा सर्वशून्यदोषश्च ।
स यथा लक्षणभेदाल्लक्ष्यविभागोऽस्त्यनन्यथासिद्धः ॥६१३॥

अर्थ—शंकाकार का ऐसा मानना ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानने में संकर दोष और सर्वशून्य दोष आता है क्योंकि लक्षण के भेद से लक्ष्य का भेद अवश्यंभावी है।

भावार्थ—सत् को एक कहने पर भी सत् लक्ष्य और उसका 'एक' लक्षण सिद्ध होता है। इसी प्रकार जीव को चित्स्वरूप कहने पर भी जीव लक्ष्य और उसका चित् लक्षण सिद्ध होता है। ऐसा लक्ष्य लक्षण रूप भेद व्यवहार नय का ही विषय हो सकता है निश्चय का नहीं। यदि निश्चय का भी भेद विषय माना जाय तो दोनों का एक विषय होने से संकरता हो जायेगी। तथा इस प्रकार निश्चय नय का अभाव होने से एक व्यवहार नय शेष रहता है। निरपेक्ष नय मिथ्या है अर्थात् निरपेक्ष नय कोई नय ही नहीं होता इस प्रकार व्यवहार का भी अभाव प्राप्त होने से सर्वशून्यता प्राप्त होती है।

लक्षणमेकस्य सतो यथाकथञ्चिद्यथा द्विधाकरणम्।
व्यवहारस्य तथा स्यात्तदितरथा निश्चयस्य पुनः ॥६१४॥

अर्थ—व्यवहार नय का लक्षण यह है कि एक ही सत् का जिस किसी प्रकार दो रूप करना अर्थात् सत् में भेद बतलाना व्यवहार नय का लक्षण है ठीक इस से उलटा अर्थात् एक सत् को जिस किसी प्रकार दो रूप न करना निश्चय नय का लक्षण है अर्थात् सत् में अभेद बतलाना निश्चय नय का लक्षण है। इसलिए निश्चय नय को व्यवहार नय के समान उदाहरण सहित बतलाना ठीक नहीं है।

अथ चेत्सदेकमिति वा चिदेव जीवोऽथ निश्चयो वदति।
व्यवहारान्तर्भावो भवति सदेकस्य तद्द्विधापत्तेः ॥६१५॥

अर्थ—फिर भी यदि शंकाकार के कथनानुसार सत् को एक माना जाय अथवा चित् ही जीव माना जाय और इनको निश्चय नय का उदाहरण कहा जाय तो इस प्रकार एक सत् को द्वैत भाव का प्रसंग आने से वह निश्चय नय व्यवहार में ही अन्तर्भाव (समावेश) हो जायेगा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(व्यवहार नय से निश्चय नय में कुछ भी भेद नहीं रहेगा क्योंकि ये दोनों ही उदाहरण व्यवहार नय में ही गर्भित हो जाते हैं)।

सत् को एक कहने से भी सत् में भेद ही सिद्ध होता है अथवा जीव को चित्स्वरूप कहने से भी जीव में भेद ही सिद्ध होता है। किस प्रकार ? सो कहते हैं:—

एकं सदुदाहरणे सल्लक्ष्यं लक्षणं तदेकमिति।
लक्षणलक्ष्यविभागो भवति व्यवहारतः स नान्यत्र ॥६१६॥

अर्थ—शंकाकार ने निश्चय नय का उदाहरण यह बतलाया है कि सत् एक है, इसमें ग्रन्थकार दोष दिखलाते हैं—सत् एक है यहां पर सत् तो लक्ष्य ठहरता है और उसका एक यह लक्षण ठहरता है किन्तु इस प्रकार लक्ष्य लक्षण का भेद व्यवहार नय में ही होता है निश्चय नय में नहीं होता।

अथ चिदेव जीवो यदुदाह्रियतेऽप्यभेदबुद्धिमता।
उक्तवदत्रापि तथा व्यवहारनयो न परमार्थः ॥६१७॥

अर्थ—जिस प्रकार सत् और एक में लक्षण लक्ष्य का भेद होता है उसी प्रकार "चित् ही जीव है" यह जो उदाहरण अभेद बुद्धि से निश्चय नय का दिया जाता है वहां भी उपर्युक्तानुसार जीव लक्ष्य और चित् उसका लक्षण है इससे वह भी व्यवहार नय सिद्ध होता है निश्चय नय सिद्ध नहीं होता। अतः यह उदाहरण भी व्यवहार नय है निश्चय नय नहीं।

एवं सुसिद्धसंकरदोषे सति सर्वशून्यदोषः स्यात्।
निरपेक्षस्य नयत्वाभावात्तल्लक्षणाद्यभावत्वात् ॥६१८॥

अर्थ—इस प्रकार दोनों ही नयों में संकरता आती है। संकरता आने से सर्वशून्य दोष आता है। वह इस प्रकार कि दोनों व्यवहार के उदाहरण बनने से एक व्यवहार नय ही बचता है। निश्चय नय नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहता यह संकरता हुई। एक नय निरपेक्ष है। जो निरपेक्ष है उसमें नयपना ही नहीं आता क्योंकि निरपेक्षता नय का लक्षण ही नहीं है। इस प्रकार व्यवहार नय का भी अभाव प्राप्त होने से दोनों का अभाव होता है वही सर्वशून्यता है। भावार्थ के लिये पूर्व ६१३ देखिये।

शंका ६१९–६२०

ननु केवलं सदेव हि यदि वा जीवो विशेषनिरपेक्षः।
भवति च तदुदाहरणं भेदाभावस्तदा हि को दोषः ॥६१९॥

शंका—यदि सत् को एक कहने से और जीव को चित् रूप कहने से भी व्यवहार नय का ही विषय आजाता है तो निश्चय नय का उदाहरण विशेष निरपेक्ष (भेद की अपेक्षा बिना) केवल सत् ही कहना चाहिए अथवा जीव ही कहना चाहिये। सत् का एकत्व विशेष और जीव का चित् विशेष नहीं कहना चाहिये। सत् मात्र कहने से अथवा जीव मात्र कहने से भेद का अभाव होने से उस निश्चय का उदाहरण बन जाता है। फिर कोई दोष नहीं रहता है क्योंकि सत्-मात्र और जीव-मात्र कहने से भेदबुद्धि नहीं रहती।

शंका चालू

अपि चैवं प्रतिनियतो व्यवहारस्यावकाश एव यथा।
सदनेकं च सदेकं जीवश्चिद्द्रव्यमात्मवानिति चेत् ॥६२०॥

अर्थ—और ऐसा मानने पर व्यवहार का अवकाश निश्चित रूप से रह ही जाता है। जैसे यह कहना कि सत् एक है, सत् अनेक है, जीव चिद्द्रव्य है, जीव आत्मवान् है। यह भेद रूप ज्ञान ही व्यवहार नय का लक्षण है निश्चय नय में केवल सत् अथवा जीव ही उदाहरण मान लेने चाहियें। निश्चय को उदाहरण रहित मानना ठीक नहीं है, यदि ऐसा मानें तो ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाधान ६२१ से ६२५ तक

न यतः सदिति विकल्पो जीवः काल्पनिक इति विकल्पश्च ।
तत्तद्धर्मविशिष्टस्तद्वानुपचर्यते स यथा ॥६२१॥

अर्थ—शंकाकार का उपर्युक्त कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि सत् यह विकल्प और जीव यह विकल्प दोनों ही काल्पनिक हैं क्योंकि उस २ धर्म से विशिष्ट (सहित) होने से अर्थात् जिसमें जो धर्म रहता है उस २ धर्म वाला उपचार नय से वह कहने में आता है जैसे—

जीवः प्राणादिमतः संज्ञाकरणं तदेतदेवेति ।
जीवनगुणसापेक्षो जीवः प्राणादिमानिहास्त्यर्थात् ॥६२२॥

अर्थ—जो प्राणों का धारण करने वाला है उसी को जीव इस नाम से कहा जाता है अथवा जो जीवन गुण की अपेक्षा रखने वाला है उसे ही जीव कहते हैं। इसलिये जीवमात्र कहने से भी प्राण विशिष्ट और जीवत्वगुण विशिष्ट का ही बोध होता है। इसी प्रकारः—

यदि वा सदिति सतः स्यात्संज्ञा सत्तागुणस्य सापेक्षात् ।
लब्धं तदनुक्तमपि सद्भावात् सदिति वा गुणो द्रव्यम् ॥६२३॥

अर्थ—अथवा सत्ता गुण की अपेक्षा सहित होने से 'सत्' ये द्रव्य की संज्ञा है। इसलिये सत् इतना कहने से ही विना कहे हुये भी अस्तित्व गुण अथवा अस्तित्व गुण विशिष्ट द्रव्य का बोध होता है।

भावार्थ—सत्ता गुण की अपेक्षा से 'सत् को' सत् कहते हैं। इस लिये बिना कहे ही सतपने से 'सत्' यह गुण अथवा द्रव्य कहा जाता है अर्थात् सत् शब्द का अर्थ उपचार से सत्वगुणवान् (सत्वगुण वाला द्रव्य) हो जाता है। इसलिये सत् का अर्थ गुण तथा सत्वयुक्त द्रव्य तथा जीव का अर्थ जीवयुक्त (प्राणदिवान) हो जाता है। अतः सत् लक्ष्य और सत्वादिक उस का लक्षण और जीव लक्ष्य तथा जीवत्व उसका लक्षण मानकर उसमें लक्ष्य लक्षण भाव रूप भेद कल्पना होने से इनका भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यवहार में ही अन्तर्भाव (समावेश) हो जाता है। अतः विशेष निरपेक्ष (भेद को अपेक्षा विना) केवल सत् और जीव को निश्चय नय का उदाहरण मानने में उक्त दोष आते हैं ऐसा समझना चाहिए।

यदि च विशेषणशून्यं विशेष्यमात्रं सुनिश्चयस्यार्थः ।
द्रव्यं गुणो न पर्यय इति वा व्यवहारलोपदोषः स्यात् ॥६२४॥

अर्थ—यदि विशेषण रहित विशेष्य ही केवल निश्चय नय का विषय (उदाहरण) माना जाय तो द्रव्य गुण और पर्याय ये कुछ भी नहीं बनने से व्यवहार के लोप का प्रसंग प्राप्त होता है।

भावार्थ—जो विशेषण शून्य विशेष्य मात्र को निश्चय नय का विषय मानोगे तो विशेषण मात्र का सर्वथा अभाव मानना पड़ेगा तथा विशेषण मात्र के अभाव में द्रव्य गुण या पर्याय का व्यवहार भी नहीं किया जा सकेगा। इसलिये विशेषण शून्य केवल विशेष्य को निश्चय नय का विषय (उदाहरण) मानने से व्यवहार लोप का प्रसंग दोष आता है।

तस्मादवसेयमिदं यावदुदाहरणपूर्वको रूपः ।
तावान् व्यवहारनयस्तस्य निषेधात्मकस्तु परमार्थः ॥६२५॥

अर्थ—इसलिये यह निश्चय करना चाहिये कि जितना भी उदाहरण पूर्वक कथन है उतना सब व्यवहार नय है। उस व्यवहार का निषेधक ही निश्चय नय है। 'नेति' इस विकल्प से वह कहा जाता है। विशेषण विशेष्य का विभाग उसमें नहीं होता और उस का कोई उदाहरण भी नहीं होता।

अगली भूमिका—इस प्रकार ६११ से ६२५ तक निश्चय नय को उदाहरण रहित सिद्ध करके अब ६२६ से ६३६ तक व्यवहार नय प्रतिषेध्य क्यों है और निश्चय नय प्रतिषेधक क्यों है इस को समझाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यवहार प्रतिषेध्य है, निश्चय प्रतिषेधक है ६२६ से ६३६ तक

शंका

ननु च व्यवहारनयो भवति च निश्चयनयो विकल्पात्मा।
कथमाद्यः प्रतिषेध्योऽस्त्यन्यः प्रतिषेधकश्च कथमिति चेत् ॥६२६॥

शंका—व्यवहार नय भी विकल्पात्मक है और निश्चयनय भी विकल्पात्मक है फिर पहली व्यवहार नय क्यों निषेध करने योग्य है तथा दूसरी निश्चय नय क्यों उसका निषेध करने वाला है ? अर्थात् जब दोनों ही नय विकल्पात्मक हैं तो एक निषेध्य और दूसरा निषेधक उनमें कैसा?

समाधान ६२७ से ६३० तक

न यतो विकल्पमात्रमर्थाकृतिपरिणतं यथा वस्तु ।
प्रतिषेध्यस्य न हेतुश्चेदयथार्थस्तु हेतुरिह तस्य ॥६२७॥

अर्थ—उपर्युक्त शंका ठीक नहीं है क्योंकि हरएक वस्तु में उस वस्तु के अनुरूप अर्थाकार परिणमन करने वाले ज्ञान को ही विकल्प कहते हैं। वह विकल्प (राग सहित ज्ञान का अंश) प्रतिषेध्य का कारण नहीं है क्योंकि वह विकल्पात्मक ज्ञान तो व्यवहार निश्चय दोनों में होता है। उसके प्रतिषेध्य का कारण तो अयथार्थता है (क्योंकि व्यवहार नय द्वारा जो वस्तु का स्वरूप कहा जाता है वह यथार्थ नहीं होता है अर्थात् व्यवहार नय मिथ्या स्वरूप की प्ररूपणा करता है इसलिये प्रतिषेध्य है।

भावार्थ—व्यवहार नय के निषेध का कारण विकल्पात्मक बोध नहीं है। विकल्पात्मक बोध तो निश्चय नय में भी है किन्तु उसका कारण अयथार्थ बोध है अर्थात् व्यवहार नय जो वस्तु का स्वरूप कहता है वह मिथ्या है इसलिए वह निषेध करने योग्य है। इसी बात को नीचे स्पष्ट करते हैं।

व्यवहार किल मिथ्या स्वयमपि मिथ्योपदेशकश्च यतः ।
प्रतिषेध्यस्तस्मादिह मिथ्यादृष्टिस्तदार्थदृष्टिश्च ॥६२८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—व्यवहार नय मिथ्या है क्योंकि वह स्वयं ही मिथ्या उपदेश देता है इसलिये वह प्रतिषेध्य (निषेध करने योग्य) है और इसी लिये उस व्यवहार नय के अनुसार पदार्थ को देखने वाला (श्रद्धान करने वाला) भी मिथ्यादृष्टि है।

भावार्थ—व्यवहार नय विकल्पात्मक होने से मिथ्या नहीं है परन्तु वह मिथ्या पदार्थ का कथन करने वाला होने से मिथ्या है।

स्वयमपि भूतार्थत्वाद् भवति स निश्चयनयो हि सम्यक्त्वम्।
अविकल्पवदतिवागिव स्यादनुभवैकगम्यवाच्यार्थः ॥६२९॥

अर्थ—वह निश्चय नय यथार्थ विषय का प्रतिपादन करने वाला है इसलिये वह सम्यक्रूप (सच्चा और सम्यक्त्व का विषय है)। यद्यपि निश्चय नय भी विकल्पात्मक है तो भी वह विकल्प रहित सा प्रतीत होता है। यद्यपि यह "न" इत्याकारक वचन से कहा जाता है तो भी उसमें भेद जनक कोई प्रकार का विकल्प न होने से वचन अगोचर ही जैसा प्रतीत होता है। निश्चय नय का क्या वाच्य है यह बात अनुभव-गम्य ही है अर्थात् निश्चय नय के विषय का बोध अनुभव से ही जाना जाता है। वचन से वह नहीं कहा जाता क्योंकि जो कुछ वचन से विवेचन किया जायेगा वह सब भेद रूप होने से व्यवहार नय का ही विषय हो जाता है इसलिये वचन से तो वह "न" निषेध रूप ही वक्तव्य है। पर उसका विषय वक्तव्य नहीं है।

यदि वा सम्यग्दृष्टिस्तद्दृष्टिः कार्यकारी स्यात्।
तस्मात् स उपादेयो नोपादेयस्तदन्यनयवादः ॥६३०॥

अर्थ—अथवा उस निश्चय नय के विषय पर श्रद्धान करने वाला ही सम्यग्दृष्टि है और वही कार्यकारी है। इसलिए निश्चय नय ही उपा-देय (ग्राह्य) है। अन्य जितना भी व्यवहार नयवाद है कोई ग्राह्य नहीं है (हेय है)।

भावार्थ—यहां विकल्प सहित के निश्चय नय को सम्यक्त्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा है और उसके विषय पर दृष्टि रखने वाले को ही सम्यग्दृष्टि कहा है उसका कारण यह है कि निश्चय नय के विषय पर दृष्टि रखने वाला थोड़े समय में ही बुद्धि पूर्वक विकल्प (राग) को हटाकर स्वात्मानुभूति प्रगट कर सकता है। भेद में अटकने वाले को यह अवकाश नहीं है।

शंका ६३१-६३२

ननु च व्यवहारनयो भवति स सर्वोऽपि कथमभूतार्थः ।
गुणपर्ययवद् द्रव्यं तथोपदेशात्तथानुभूतेश्च ॥६३१॥

शंका—सम्पूर्ण ही व्यवहार नय किस प्रकार मिथ्या हो सकता है ? क्योंकि 'गुणपर्ययवद् द्रव्यं ये जो द्रव्य को आगम उपदेश से गुण-पर्यायवाला कहा है वैसा ही वह अनुभव से भी गुणपर्यायवाला ही प्रतीत होता है।

शंका चालू

अथ किमभूतार्थत्वं द्रव्याभावोऽथ वा गुणाभावः ।
उभयाभावो वा किल तद्योगस्याप्यभावसादिति चेत् ॥६३२॥

अर्थ—शंकाकार पूछता है कि गुणपर्ययवद् द्रव्यं' यहां पर क्या अभूतार्थपना है ? द्रव्य अभाव है अथवा गुण अभाव है अथवा दोनों का अभाव है अथवा उन दोनों के योग (मेल) का अभाव है। किस का अभाव है जिससे कि 'गुणपर्ययवद् द्रव्यं' यह कथन अभूतार्थ समझा जाय। यदि किसी का अभाव नहीं है तो फिर व्यवहार नय मिथ्या क्यों ?

समाधान ६३३ से ६३६ तक

सत्यं न गुणाभावो द्रव्याभावो न नोभयाभावः ।
न हि तद्योगाभावो व्यवहारः स्यात्तथाप्यभूतार्थः ॥६३३॥

अर्थ—ठीक है। न गुण का अभाव है, न द्रव्य का अभाव है, न दोनों का अभाव है और न उन दोनों के योग का अभाव है तो भी व्यवहार नय मिथ्या ही है। क्या मिथ्या है ? इसी को स्पष्ट करते हैं:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इदमत्र निदानं किल गुणवद्द्रव्यं यदुक्तमिह सूत्रे ।
अस्ति गुणोऽस्ति द्रव्यं तद्योगात्तदिह लब्धमित्यर्थात् ॥६३४॥

अर्थ—व्यवहार नय मिथ्या है इसमें यह कारण है कि जो सूत्र में 'गुणपर्ययवद्द्रव्यं' कहा गया है उसका यह अर्थ निकलता है कि एक कोई गुण पदार्थ जुदा है। एक द्रव्य पदार्थ जुदा है। उन दोनों के योग से द्रव्य सिद्ध होता है।

तदसन्न गुणोऽस्ति यतो न द्रव्यं नोभयं न तद्योगः ।
केवलमद्वैतं सद्भवतु गुणो वा तदेव सद्द्रव्यम् ॥६३५॥

अर्थ—परन्तु ऐसा कथन ही मिथ्या है क्योंकि न कोई गुण है न द्रव्य है, न दोनों है. और न उनका योग ही है किन्तु केवल अद्वैत सत् है। इस सत् को चाहे गुण मानो अथवा द्रव्य मानो परन्तु ये भिन्न नहीं है अर्थात् निश्चय से अभिन्न ही हैं, एक ही हैं।

तस्मान्न्यायागत इति व्यवहारः स्यान्नयोऽप्यभूतार्थः ।
केवलमनुभवितारस्तस्य च मिथ्यादृशो हतास्तेऽपि ॥६३६॥

अर्थ—इसलिये यह बात न्याय से प्राप्त हो चुकी कि व्यवहार नय अभूतार्थ है। जो लोग केवल उसी व्यवहार नय के अनुभव करने वाले हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं वे भी यहां खण्डित हो चुके।

भावार्थ—गाथा में जो 'केवल' शब्द का प्रयोग किया गया है वह यह सूचना देता है कि व्यवहार करते करते कभी भी निश्चय प्रगट नहीं होता। व्यवहार नय उक्त प्रकार के भेद को विषय करता है कारण कि विधिपूर्वक भेद करना ही 'व्यवहार' शब्द का अर्थ है। इसलिये सिद्ध होता है कि व्यवहार नय अभूतार्थ ही है।

अगली भूमिका—इस प्रकार निश्चय को प्रतिषेधक और व्यवहार को प्रतिषेध्य सिद्ध किया। अब ६३७ से ६४१ तक यह समझाते हैं कि व्यवहार नय प्रतिषेध्य है, हेय है. उपादेय नहीं हैं फिर भी वह है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जरूर। कुछ प्रयोजन के लिए स्थापन करने योग्य जरूर है। सर्वथा अभाव करने योग्य नहीं है क्योंकि वह परमार्थ का प्रतिपादक है।

(श्री समयसार गाथा १० की टीका)

व्यवहारनय की स्थापना ६३७ से ६४१ तक

शंका

ननु चैवं चेन्नियमादादरणीयो नयो हि परमार्थः ।
किमकिञ्चित्कारित्वाद् व्यवहारेण तथाविधेन यतः ॥६३७॥

शंका—यदि व्यवहार नय मिथ्या ही है तो केवल निश्चय नय ही आदरणीय होना चाहिये। व्यवहार नय मिथ्या है इसलिये कुछ भी करने में असमर्थ है। फिर उसे सर्वथा कहना ही क्यों चाहिये ?

समाधान ६३८–६३९

नैवं यतो बलादिह विप्रतिपत्तौ च संशयापत्तौ ।
वस्तु विचारे यदि वा प्रमाणमुभयालम्बि तज्ज्ञानम् ॥६३८॥

अर्थ—ऊपर की शंका ठीक नहीं है कारण कि किसी विषय में विवाद होने पर अथवा किसी विषय में संदेह होने पर अथवा वस्तु के विचार करने में व्यवहार नय का अवलम्बन बलपूर्वक (अवश्य ही) लेना पड़ता है। जो ज्ञान निश्चय नय और व्यवहार नय दोनों का अवलम्बन करता है वही ज्ञान प्रमाण ज्ञान समझा जाता है।

भावार्थ—गाथा में 'बलात्' शब्द डाला है वह खास लक्ष में रखने योग्य है। मुमुक्षु जीव को व्यवहार नय की भावना नहीं है फिर भी अपने में राग होने से वह बलपूर्वक आये बिना रहता नहीं। यह भाव दर्शाने के लिये 'बलात्' शब्द डाला है।

तस्मादाश्रयणीयः केषाञ्चित् स नयः प्रसङ्गत्वात् ।
अपि सविकल्पानामिव न श्रेयो निर्विकल्पबोधवताम् ॥६३९॥

अर्थ—इसलिये प्रसंगवश (ऊपर के कार्यों के लिये) किन्हीं २ को व्यवहार नय भी आश्रयणीय (आश्रय करने योग्य) है। वह सवि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्प बोध वालों के लिये ही आश्रय करने योग्य है। सविकल्पक बोध वालों के समान निर्विकल्पक बोधवालों के लिये वह नय हितकारी नहीं है।

भावार्थ—निर्विकल्प ज्ञान में प्रमाण नय निपेक्ष का उदय नहीं रहता इसलिये निर्विकल्पकों को व्यवहार नय से क्या प्रयोजन।

(२) जहां तक निश्चय नय द्वारा प्ररूपित वस्तु को न पहचाने वहां तक व्यवहार नय द्वारा वस्तु का निश्चय करता है। इसलिये नीचे की दशा में 'व्यवहार नय आदरणीय नहीं है' ऐसी हेयबुद्धि को लक्ष में रखकर वह व्यवहार नय वस्तु स्वरूप समझने के लिये कार्यकारी है, अर्थात् जो व्यवहार नय को उपचार मात्र मानकर उस के द्वारा वस्तु का निर्णय करे तो वहां व्यवहार के प्रति हेय बुद्धि होने से वह कार्यकारी कहलाये पर जो निश्चय की माफिक व्यवहार नय को जरा भी परमार्थ-भूत माने तो वह व्यवहार नय उलटा अकार्यकारी हो जाये।

शंका

ननु च समीहितसिद्धिः किल चैकस्मान्नयात्कथं न स्यात्।
विप्रतिपत्तिनिरासो वस्तुविचारश्च निश्चयादिति चेत् ॥६४०॥

अर्थ—अपने अभीष्ट की सिद्धि एक ही नय (निश्चय) से क्यों नहीं हो जाती है? विवाद का परिहार और वस्तु का विचार भी निश्चय से ही हो जायगा। इसलिये केवल निश्चय नय ही मान लो? व्यवहार नय के मानने की क्या आवश्यकता है?

समाधान

नैवं यतोऽस्ति भेदोऽनिर्वचनीयो नयः स परमार्थः।
तस्मात्तीर्थस्थितये श्रेयान् कश्चित् स वावदूकोऽपि ॥६४१॥

अर्थ—ऊपर जो शंका की गई है वह ठीक नहीं है क्योंकि दोनों नयों में भेद है। वह निश्चय नय अनिर्वचनीय है। उसके द्वारा पदार्थ का विवेचन नहीं किया जा सकता। इसलिये तीर्थ की स्थिति के लिये कोई बोलने वाला भी नय (व्यवहार नय) चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—इन कामों के लिये निश्चय नय उपयोगी नहीं है इसलिये एक निश्चय नय ही मानना ठीक नहीं है। तीर्थस्थिति अर्थात् (१) जैन दर्शन के विषय में विप्रतिपत्ति तथा संशय के दूर करने के लिये (२) वस्तु स्वरूप के सम्बन्ध में कोई विरुद्ध प्रतिपादन करता हो तो उस को हटाने के लिये। (३) अपने को संशय होवे तो उसका विचार करके निर्णय करने के लिये अथवा विशेष ज्ञान की प्राप्ति अर्थ विचार करने के लिये और (४) गुरु शिष्य की समझने समझाने की पद्धति के लिये व्यवहार नय भी उपयोगी है।

अगली भूमिका—६३७ से ६४१ तक व्यवहार नय की स्थापना करके अब ६४२ से ६४४ तक यह समझाते हैं कि विषय व्यवहार और निश्चय का एक ही है। वाच्य एक ही है। अन्तर केवल इतना है कि व्यवहार में वह भेदरूप है, निश्चय में अभेदरूप है। व्यवहार का विषय शब्द और विकल्प में प्रकट कर दिया जाता है। निश्चय का विषय शब्द और विकल्प में प्रकट नहीं किया जा सकता है किन्तु अनुभवगम्य है। 'नेति' रूप जो सूक्ष्म शब्द या विकल्प है वह केवल अनुभवगम्य अखण्ड विषय का संकेत मात्र है। विषय इसका अखण्ड अनिर्वचनीय ही है।

निश्चय नय का वाच्य विषय ६४२ से ६४४ तक

शंका

ननु निश्चयस्य वाच्यं किमिति यदालम्ब्य वर्तते ज्ञानम्।
सर्वविशेषाभावेऽत्यन्ताभावस्य वै प्रतीतत्वात् ॥६४२॥

शंका—निश्चय नय का क्या वाच्य (विषय) है जिसको अवलम्बन करके निश्चयात्मक ज्ञान प्रवर्तता है क्योंकि सम्पूर्ण विशेषों के अभाव में निश्चय से अत्यन्ताभाव की ही प्रतीति होती है?

समाधान ६४३–६४४

इदमत्र समाधानं व्यवहारस्य च नयस्य यद्वाच्यम्।
सर्वविकल्पाभावे तदेव निश्चयनयस्य यद्वाच्यम् ॥६४३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—ऊपर की शंका का यहां पर समाधान किया जाता है कि जो कुछ व्यवहार नय का वाच्य है उसमें से सम्पूर्ण विकल्पों (भेदों) को दूर करने पर जो वाच्य रहता है वही निश्चय नय का वाच्य है।

अस्त्यत्र च संदृष्टिस्तृणाग्निरिति वा यदोष्ण एवाग्निः।
सर्वविकल्पाभावे तत्संस्पर्शादिनाप्यशीतत्वम् ॥६४४॥

अर्थ—निश्चय नय के वाच्य के विषय में दृष्टान्त भी है। जिस समय तृण की अग्नि (कण्डे की अग्नि–कोयले की अग्नि) अथवा उष्ण ही अग्नि ऐसा सविकल्प व्यवहार होता है, उस समय तृणाग्नि-उष्णाग्नि आदि विशेष रूप उन सब विकल्पों के अभाव में भी संस्पर्शनादि के द्वारा वह अग्नि उष्णात्मक है ऐसा जाना जा सकता है।

भावार्थ—उष्णात्मक धर्म की अपेक्षा अग्नि को उष्ण कहना तथा तृण के निमित्त से होने वाली अग्नि को तृणाग्नि कहना यह व्यवहार नय है तथा व्यवहार का प्रतिषेधक निश्चय नय है। व्यवहारनय द्वारा प्रतिपाद्य विषय एक एक धर्म रूप पड़ता है परन्तु व्यवहार के संपूर्ण भेदों का जो प्रतिषेध है वह निश्चय नय का वाच्य है और यह निश्चय नय का विषय व्यवहार नय के विकल्प के अभाव रूप होने से उसमें भेद नहीं पड़ता। जैसे अग्नि स्पर्शनादिज्ञान द्वारा जानी जा सकती है उसी प्रकार निश्चय नय का विषय अनिर्वचनीय होने पर भी ज्ञान द्वारा जाना जा सकता है। निषेध कहने से उसका अभावात्मक वाच्य नहीं समझना चाहिये किन्तु शुद्ध (अखण्ड) द्रव्य समझना चाहिये।

अगली भूमिका—इस प्रकार निश्चय नय का विषय बतलाकर अब एक सूक्ष्म रहस्य की बात यह समझाते हैं कि यहां तक आने पर भी जब तक निश्चय नय का अवलम्बन है तब तक भी परसमयी अर्थात् मिथ्यादृष्टि है। जब उस निश्चय के भी अवलम्बन को छोड़कर नयातीत अवस्था में अर्थात् स्वात्मानुभूति में प्रवेश करता है तब सम्यग्दृष्टि है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह विषय ज्यों का त्यों श्रीसमयसार जी गाथा १४३, १४४ तथा उनके कलशों का है।

निश्चयनयावलम्बी भी परसमयी है केवल नयातीत पुरुष स्वात्मानुभूति रूप है। इसकी सिद्धि ६४५ से ६५३ तक।

शंका

ननु चैवं परसमयः कथं स निश्चयनयावलम्बी स्यात्।
अविशेषादपि स यथा व्यवहारनयावलम्बी यः ॥६४५॥

शंका—जो व्यवहार नय का अवलम्बन करने वाला है वह जिस प्रकार सामान्य रीति से परसमयी अर्थात् मिथ्यादृष्टि है, स्वात्मानुभूति से रहित है, उसी प्रकार जो निश्चय नय का अवलम्बन करने वाला है। वह परसमयी अर्थात् मिथ्यादृष्टि-स्वात्मानुभूति से रहित कैसे है? हमारा पूछने का भाव यह है कि व्यवहार नय के अवलम्बन करने वाले को मिथ्यादृष्टि कहा गया सो तो ठीक परन्तु निश्चयनयावलम्बी को भी मिथ्यादृष्टि ही कहा गया है सो क्यों?

भावार्थ—शंकाकार कहता है कि पहले श्लोक ५०६ से ५१० तक सब नयों को अपरमार्थरूप और हेय कहा है। उससे ऐसा प्रतिभासित होता है कि व्यवहारनयावलम्बी और निश्चयनयावलम्बी दोनों परसमयी (मिथ्यादृष्टि) हैं। उनमें व्यवहारनयावलम्बी को परसमयी कहा वह तो ठीक है परन्तु निश्चयनयावलम्बी को परसमयी कहा है वह ठीक नहीं है? शंकाकार के पेट की बात यह है कि जो व्यवहार को छोड़कर निश्चय में आया है उसे भी स्वसमयी मानना चाहिये तथा जो निश्चय से भी ऊपर निर्विकल्प स्थिति में लीन है उसको भी स्वसमयी मानना चाहिये और जो व्यवहार नयावलम्बी ही है उसको ही परसमयी अर्थात् मिथ्यादृष्टि कहना चाहिये परन्तु निश्चय नयावलम्बी को परसमयी अर्थात् मिथ्यादृष्टि नहीं कहना चाहिये। आचार्य महाराज दोनों को परसमयी (मिथ्यादृष्टि) कहना चाहते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं केवल निर्विकल्प स्थिति में लीन होने वाले स्वात्मानुभूति रूप स्वसमयी को सम्यग्दृष्टि कहना चाहते हैं।

समाधान ६४६ से ६५३ तक

सत्यं किन्तु विशेषो भवति स सूक्ष्मो गुरूपदेश्यत्वात्।
अपि निश्चयनयपक्षादपरः स्वात्मानुभूति महिमा स्यात् ॥६४६॥

अर्थ—आपकी शंका ठीक है। इसमें कुछ विशेषताहै। वह विशेषता सूक्ष्म है क्योंकि वह विशेषता गुरु के द्वारा उपदेश करने योग्य है। निश्चय नय के पक्ष से स्वात्मानुभूति की महिमा भिन्न है।

भावार्थ—व्यवहार नय मिथ्या अर्थ का उपदेश करने वाला है इसलिये वह तो मिथ्या और प्रतिषेध्य है तथा इस व्यवहार के विषय पर दृष्टि रखने वाला भी मिथ्यादृष्टि है (६२८) निश्चय नय सम्यकत्व है—निर्विकल्प जैसा है तथा उसके ऊपर दृष्टि रखने वाला ही सम्यग्दृष्टि है (६२९–६३०)। इसलिये निश्चय नयवाली परसमयी (मिथ्यादृष्टि) नहीं है। ऐसा शंकाकार ने कहा वह तो सत्य है परन्तु इतना विशेष है कि–जोकि-निश्चयनयावलम्बी आत्मज्ञ नी गुरु के उपदेशानुसार थोड़े समय में विकल्प (राग) से अतिक्रांत होकर स्वात्मानुभूति प्रगट करके सम्यग्दृष्टि अवश्य होगा तो भी स्वात्मानुभूति होने से पहले जब तक उस निश्चयावलम्बी को विकल्प (बुद्धिपूर्वक का राग) रहता है तब तक उसको भी परसमयीपना रहता है। वह गुरु का उपदेश इस प्रकार है :—

दोण्हवि णयाण भणियं जाणइ णवरं तु समयपडिबद्धो।
ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचिवि णयपक्खपरिहीणो ॥१४३॥

द्वयोः अपि नययोः भणितं जानाति केवलं तु समयप्रतिबद्धः।
न तु नयपक्षं गृह्णाति किंचिदपि नयपक्षपरिहीनः ॥१४३॥

अर्थ—नयपक्ष से रहित जीव समय से प्रतिबद्ध होता हुआ (अर्थात् चित्स्वरूप आत्मा का अनुभव करता हुआ), दोनों ही नयों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथन को मात्र जानता ही है परन्तु नयपक्ष को किंचित् मात्र भी ग्रहण नहीं करता है।

टीका—जैसे केवली भगवान्, विश्व के साक्षीपने के कारण, श्रुतज्ञान के अवयवभूत व्यवहार, निश्चयनयपक्षों के स्वरूप को ही मात्र जानते हैं, परन्तु निरंतर प्रकाशमान, सहज, विमल, सकल केवलज्ञान के द्वारा सदा स्वयं ही विज्ञानघन हुवा होने से, श्रुतज्ञान की भूमिका की अतिक्रान्तता के द्वारा (अर्थात् श्रुतज्ञान की भूमिका को पार कर चुकने के कारण) समस्त नयपक्ष के ग्रहण से दूर हुए होने से किसी भी नयपक्ष को ग्रहण नहीं करते, इसी प्रकार (श्रुतज्ञानी आत्मा), क्षयोपशम से जो उत्पन्न होते हैं, ऐसे श्रुतज्ञानात्मक विकल्प उत्पन्न होने पर भी पर का ग्रहण करने के प्रति उत्साह निवृत्त हुवा होने से, श्रुतज्ञान के अवयवभूत व्यवहार निश्चयनय पक्षों के स्वरूप को ही केवल जानते हैं, परन्तु तीक्ष्ण ज्ञानदृष्टि से ग्रहण किये गए निर्मल, नित्य उदित, चिन्मय, समय से प्रति बद्धता के द्वारा (अर्थात् चैतन्यमय आत्मा के अनुभवन द्वारा) अनुभव के समय स्वयं ही विज्ञानघन हुये होने से श्रुतज्ञानात्मक समस्त अंतर्जल्प तथा बहिर्जल्परूप विकल्पों की भूमिका की अतिक्रान्तता के द्वारा समस्त नयपक्ष के ग्रहण से दूर हुवे होने से, किसी भी नय पक्ष को ग्रहण नहीं करता, वह (आत्मा) वास्तव में समस्त विकल्पों से पर, परमात्मा, ज्ञानात्मा, प्रत्यग्ज्योति, आत्मख्यातिरूप, अनुभूति मात्र समयसार है।

भावार्थ—जैसे केवली भगवान सदा नयपक्ष के स्वरूप के साक्षी (ज्ञाता दृष्टा) हैं उसी प्रकार श्रुतज्ञानी भी जब समस्त नयपक्षों से रहित होकर शुद्ध चैतन्यमात्र भाव का अनुभवन करते हैं तब वे नयपक्ष के स्वरूप के ज्ञाता ही हैं, यदि एक नय का सर्वथा पक्ष ग्रहण किया जाये तो मिथ्यात्व के साथ मिला हुआ राग होता है; प्रयोजन वश एक नय को प्रधान करके उसका ग्रहण करे तो मिथ्यात्व के अतिरिक्त मात्र चारित्र मोह का राग रहता है और जब नय पक्ष को छोड़कर वस्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूप को मात्र जानते ही हैं तव श्रुतज्ञानी भी केवली की भांति वीतराग जैसे ही होते हैं ऐसा जानना। अव यह कहते हैं कि नियम से यह सिद्ध है कि पक्षातिक्रान्त ही समयसार है—

सम्मद्दंसणणाणं एसो लहदित्ति णवरि ववदेसं ।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥१४४॥

सम्यग्दर्शनज्ञानं एषः लभते इति केवलं व्यपदेशम् ।
सर्वनयपक्षरहितो भणितो यः सः समयसारः ॥१४४॥

अर्थ—जो सर्व नयपक्षों से रहित कहा गया है वह समयसार है; इसी (समयसार) को ही केवल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान ऐसी संज्ञा (नाम) मिलती है (नामों के भिन्न होने पर भी वस्तु एक ही है)।

टीका—वास्तव में समस्त नय पक्षों के द्वारा खण्डित न होने से जिस का समस्त विकल्पों का व्यापार रुक गया है ऐसा समयसार है; वास्तव में इस एक को ही केवल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का नाम प्राप्त है (सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान समयसार से अलग नहीं है, एक ही है)।

प्रथम, श्रुतज्ञान के अवलम्बन से ज्ञान स्वभाव आत्मा का निश्चय करके, और फिर आत्मा की प्रगट प्रसिद्धि के लिये, पर पदार्थ की प्रसिद्धि की कारणभूत इन्द्रियों और मन के द्वारा प्रवर्तमान बुद्धियों को मर्यादा में लेकर जिसने मतिज्ञान-तत्व को (मतिज्ञान के स्वरूप को) आत्मसन्मुख किया है, तथा जो नाना प्रकार के नयपक्षों के अवलम्बन से होने वाले अनेक विकल्पों के द्वारा आकुलता उत्पन्न करने वाली श्रुत-ज्ञान की बुद्धियों को भी मर्यादा में लाकर श्रुतज्ञान—तत्त्व को (श्रुतज्ञान के स्वरूप को) भी आत्मसन्मुख करता हुआ, अत्यन्त विकल्प रहित हो कर, तत्काल निजरस से ही प्रकट होता हुआ, आदि मध्य और अन्त से रहित अनाकुल, केवल एक, सम्पूर्ण ही विश्व पर मानों तैरता हो ऐसे अखण्ड प्रतिभासमय, अनन्त विज्ञानघन परमात्मारूप समयसार का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब अनुभव करता है तब उसी समय आत्मा सम्यक्तया दिखाई देता है (अर्थात् उसकी श्रद्धा की जाती है) और ज्ञात होता है इसलिये समयसार ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

भावार्थ—पहले आत्मा का आगम ज्ञान से ज्ञानस्वरूप निश्चय करके, फिर इन्द्रिय बुद्धिरूप मतिज्ञान को ज्ञानमात्र में ही मिलाकर तथा श्रुतज्ञानरूपी नयों के विकल्पों को मिटाकर श्रुतज्ञान को भी निर्विकल्प करके एक अखंड प्रतिभास का अनुभव करना ही 'सम्यग्दर्शन" और "सम्यग्ज्ञान" के नाम का प्राप्त करता है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहीं अनुभव से भिन्न नहीं है। गुरु उपदेश समाप्त हुआ।

इत्युक्तसूत्रादपि सविकल्पत्वात्तथानुभूतेश्च ।
सर्वोऽपि नयो यावान् परसमयः स च नयावलम्बी ॥६४७॥

अर्थ—(१) ऊपर कहे हुवे सूत्र से अर्थात् गुरु उपदेश से (आगम प्रमाण से) तथा (२) सविकल्प होने से (इस युक्ति से) तथा (२) उसी के अनुसार अनुभव होने से जितना कोई नय है वह सब परसमय है तथा उनका अवलम्बन करने वाला जो है, वह सब परसमयी अर्थात् मिथ्यादृष्टि है, स्वात्मानुभूति से रहित है।

भावार्थ—सब नय विकल्पात्मक है इसलिये वे रागमिश्रित है। तथा व्यवहारनय के विषय ऊपर की दृष्टि तथा निश्चय के विषय ऊपर की दृष्टि में जोकि ऊपर ६२८-६२९-६३० में कहे अनुसार अन्तर है फिर भी सब नयों में राग का अंश उठता है। इसलिये नयों के विकल्प रूप राग से जीव जबतक अतिक्रान्त होकर निर्विकल्प नहीं होता तब तक परसमयी है।

स यथा सति सविकल्पे भवति स निश्चयनयो निषेधात्मा ।
न विकल्पो न निषेधो भवति चिदात्मानुभूतिमात्रं च ॥६४८॥

अर्थ—वह स्वात्मानुभूति की महिमा इस प्रकार है कि व्यवहार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नय में वस्तु के अंशों को दिखलाने वाले विकल्प उठते हैं और निश्चय नय में अखण्ड वस्तु का ग्रहण होने के कारण उसमें निषेधात्मक विकल्प उठता है तथा स्वसमयस्थिति में न व्यवहार नय की विषयभूत विधि है कि न निश्चयनय का विषयभूत निषेध है परन्तु केवल चैतन्यमात्र आत्मा की अनुभूति है।

भावार्थ—उपर्युक्त स्वानुभूति की महिमा की प्रकाशक स्वसमय-प्रतिबद्ध अवस्था का खुलासा इस प्रकार से है कि व्यवहार नय भेद का उपदेशक है इसलिये उसमें भेदसूचक विधिरूप विकल्प उठते हैं और निश्चय नय उसका निषेध करता है इसलिये यह भी निषेधरूप विकल्प है। इस प्रकार दोनों नय विकल्पात्मक है। इसलिये निश्चय नय के विषय का रागमिश्रित ही विचार है। उससे भी ऊपर विकल्पों से पार जो निर्विकल्प स्वात्मानुभूति मात्र है वह स्वसमय प्रतिबद्ध दशा है और उसकी प्राप्ति से पहले की अवस्था को परसमय कहने में आता है। यहां कहने का हेतु यह है कि व्यवहार नय के आश्रय से तो कभी स्वानुभूति प्रगट होती ही नहीं है परन्तु निश्चय नय के आश्रय से भी प्रारम्भ में जो विकल्प (राग) उठता है उस राग से भी पार जाकर पवित्र आत्म दशा प्रगट करने के लिये पुरुषार्थ करने का ज्ञानी श्रीगुरुओं का उपदेश है।

दृष्टान्तोऽपि चमहिषध्यानाविष्टो यथा हि कोऽपि नरः।
महिषोऽयमहं तस्योपासक इति नयावलम्बी स्यात् ॥६४९॥

अर्थ—दृष्टान्त भी है जैसे कोई पुरुष महिष (भैंसे) के ध्यान में आरूढ़ है। ध्यान करते हुए वह यह समझता है कि यह महिष है और मैं उसकी उपासना (सेवा-ध्यान) करने वाला हूं। इस प्रकार के विकल्प को लिये हुए जब तक उसका ज्ञान है तब तक वह नय का अवलम्बन करने वाला है।

चिरमिचरं वा यावत् स एव दैवात् स्वयं हि महिषात्मा।
महिषस्यैकस्य यथा भवनान्महिषानुभूतिमात्रं स्यात् ॥६५०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—बहुत काल तक अथवा जल्दी ही ध्यान करते २ जिस समय वह दैव वश (स्वकाल की योग्यतावश) स्वयं भैंसा रूप बन जाता है तो उस समय वह केवल एक महिष रूप होने से अर्थात् एक महिष का ही अनुभव करने से केवल महिषानुभूति कहने में आती है।

स्वात्मध्यानाविष्टस्तथेह कश्चिन्नरोऽपि किल यावत् ।
अयमहमात्मा स्वयमिति स्यामनुभविताहमस्य नयपक्षः ॥६५१॥

अर्थ—उसी प्रकार जैसे कोई पुरुष अपने आत्मा के ध्यान करने में आरूढ़ है। ध्यान करते हुए विकल्प उठाता है कि मैं यह आत्मा हूँ और मैं ही स्वयं उसका अनुभव करने वाला हूँ। जब तक उसके ऐसा विकल्पात्मक बोध है तब तक उसके नयपक्ष है।

चिरमाचिरं वा दैवात्* स एव ! यदि निर्विकल्पश्च स्यात् ।
स्वयमात्मेत्यनुभवनात् स्यादियमात्मानुभूतिरिह तावत् ॥६५२॥

अर्थ—बहुत काल तक अथवा जल्दी ही दैववश (स्वकाल की योग्यता अनुसार) वही आत्मा जब निर्विकल्प हो जाता है (अर्थात् "मैं उपासक हूँ और मैं ही स्वयं उपास्य हूँ इस उपास्य-उपासक विकल्पको दूर कर स्वयं आत्मा निजात्मा में तन्मय हो जाता है) तब वह स्वयं आत्मा का ही अनुभव करता है, इसलिये उस समय एक आत्मानुभूति मात्र होती हैं।

भावार्थ—दृष्टांत–जिस प्रकार महिष के ध्यान में मग्न हुवा मनुष्य पहले "मैं महिष का उपासक हूँ–महिष होना चाहता हूँ" इस प्रकार की कल्पनायें करता है तब तक वह कल्पनाओं–भेदों का ग्राहक

---

*दैवात्—उपादान कारण की अपेक्षा से 'दैवात्' शब्द का अर्थ स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की योग्यता होता है। तथा निमित्त की अपेक्षा से 'दैवात्' शब्द का अर्थ द्रव्य कर्म की उस समय की अवस्था की योग्यता होता है। कर्म की अवस्था जीव को किसी प्रकार का नुकसान, सहाय के असर करता नहीं है। एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य में कुछ भी कर सके ऐसा मानना वह नयाभास है ऐसा पहले कह आये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होने से वह मनुष्य (लौकिक) व्यवहारनयावलंबी है। जब उन कल्पनाओं को मिटाकर "मैं महिष हूं" ऐसा विकल्प करता है तब तक वह (लौकिक) निश्चयनयावलम्बी है, पर ध्यान करते करते जब वह लीन हो जाता है। स्वयंमहिषपने का निर्विकल्प अनुभव करने लगता है उस समय उसके मात्र महिषानुभूति है ऐसा कहने में आता है दार्ष्टान्ति—उसी प्रकार स्वानुभूति में तत्पर व्यक्ति जब तक "यह आत्मा हमारा है—मैं उसका अनुभव करने वाला हूँ" इत्यादिक कल्पनाएं करता है तब तक वह व्यवहार नयालम्बी है। जब उन कल्पनाओं से आगे जाकर निश्चयनयालम्बी होता है। उस समय उसके "मैं अखण्ड शुद्धचैतन्यस्वभाव आत्मा हूं" ऐसा अभेद विकल्प उठता है। यह निश्चयनयावलम्बी दशा है। पर जब वह स्वात्मध्यान में तल्लीन होकर तन्मय हो जाता है और बुद्धिपूर्वक के विकल्पों से पार हो जाता है तब जो निर्विकल्प अवस्था होती है उस अवस्था को स्वात्मानुभूति कहते हैं। यह निश्चय नय से पार है।

तस्मात् व्यवहार इव प्रकृतो नात्मानुभूतिहेतुः स्यात्।
अयमहमस्य स्वामी सदवश्यम्भाविनो विकल्पत्वात् ॥६५३॥

अर्थ—इसलिये व्यवहार नय के समान निश्चयनय भी आत्मानुभूति का कारण नहीं है क्योंकि उसमें भी 'यह आत्मा है। मैं इसका स्वामी हूँ।' ऐसा सत् पदार्थ में (आत्मा में) अवश्यंभावी विकल्प उठता ही है।

भावार्थ—व्यवहार नय का विषय तो मिथ्या है कारण कि उसके आश्रय स्वात्मानुभूति होती ही नहीं है परन्तु निश्चयनय भी विकल्पात्मक होने से तथा निश्चयनय से भी आगे स्वात्मानुभूति होने से ये निश्चय नय भी वास्तव में निर्विकल्पस्वात्मानुभूति का साक्षात् कारण नहीं है कारण कि निश्चयनय में भी "यह आत्मा का स्वरूप है और मैं उसका स्वामी हूं' इस प्रकार का विकल्प (राग) होता है।

अगली भूमिका—अब यह कहते हैं कि जब तक निश्चयनय का अवलम्बन है तब तक व्यवहार का भी अवलम्बन अवश्य है क्योंकि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक नय अकेला कभी नहीं रहता। दोनों परस्पर सापेक्ष रहते हैं। विधि रूप विकल्प होगा तभी तो निषेधात्मक विकल्प की आवश्यकता पड़ेगी।

दोनों नयों की परस्पर सापेक्षता तथा उनके अवलम्बन करने वाले मिथ्यादृष्टि ६५४, ६५५

शंका

ननु केवलमिह निश्चयनयपक्षो यदि विवक्षितो भवति।
व्यवहारान्निरपेक्षो भवति तदात्मानुभूतिहेतुः सः ॥६५४॥

शंका—यदि यहां पर व्यवहार नय से निरपेक्ष केवल निश्चय नय का पक्ष ही विवक्षित किया जाय तो वह स्वात्मानुभूति का कारण होगा। जो ऐसा मानें तो ?

समाधान

नैवमसम्भवदोषाद्यतो न कश्चिन्नयो न निरपेक्षः।
सति च विधौ प्रतिषेधः प्रतिषेधे सति विधेः प्रसिद्धत्वात् ॥६५५॥

अर्थ—ऐसा नहीं है कारण वैसा मानने में असम्भव दोष आता है। कोई भी नय निरपेक्ष नहीं हुवा करती है, न हो सकती है। क्योंकि विधि के होने पर प्रतिषेध का होना भी अवश्यभावी है और प्रतिषेध के होने पर विधि का होना भी प्रसिद्ध है।

भावार्थ—नयों को निरपेक्ष कहने में यह असम्भव दोष है कारण कि—जब विधि की मुख्यता में गौणरूप से निषेध का तथा निषेध की मुख्यता में गौणरूप से विधि का ग्रहण हो जाता है। तब ही नय, नयपद के योग्य ठहरता है। इसलिये सब नय परस्पर सापेक्ष होने से उक्त शंका ठीक नहीं है। नय वस्तु के एक अंश को विषय करता है। इसलिये वह एक-विवक्षित अंश का विवेचन करता हुवा दूसरे अंश की अपेक्षा अवश्य रखता है। अन्यथा निरपेक्ष अवस्था में उसे नय ही नहीं कह सकते। विधि की विवक्षा में प्रतिषेध की सापेक्षता और प्रतिषेध की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवक्षा में विधि की सापेक्षता का होना आवश्यक है। इसलिये व्यवहार और निश्चय नय में परस्पर सापेक्षता ही है।

अगली भूमिका—निश्चयनय अखण्ड द्रव्य को विषय करता है और व्यवहारनय उसके प्रत्येक अंग को विषय करता है। इस नियमानुसार निश्चयनय एक ही हो सकता है और व्यवहार नय अनेक ही होंगे। सो इसी को ऊहापोह पूर्वक समझाते हैं।

निश्चय नय अनेक नहीं है—एक है ६५६ से ६६१ तक

शंका

ननु च व्यवहारनयो भवति यथानेक एव सांशत्वात्।
अपि निश्चयो नयः किल तद्वदनेकोऽथ चैकैकस्त्विति चेत् ॥६५६॥

शंका—जिस प्रकार व्यवहार नय एक ऐक अंश को ग्रहण करने वाली होने से अनेक ही है, उसी प्रकार व्यवहार नय के समान निश्चय नय भी एक एक मिलाकर नियम से अनेक है यदि ऐसा माना जाय तो ?

भावार्थ—जिस प्रकार भिन्न २ एक २ अंश को ग्रहण करने वाली होने से व्यवहार नय अनेक हैं उसी प्रकार भिन्न २ व्यवहार का निषेध करने से निश्चय नय भी अनेक होने चाहियें। इसलिये निश्चय नय का पूर्व नं० ५१८ के अनुसार एक मानना ठीक नहीं है।

समाधान ६५७ से ६६१ तक

नैवं यतोऽस्त्यनेको नैकः प्रथमोऽप्यनन्तधर्मत्वात्।
न तथेति लक्षणत्वादस्त्येको निश्चयो हि नानेकः ॥६५७॥

अर्थ—ऐसा नहीं है कारण कि पहली व्यवहार नय तो अनन्त धर्मों को एक २ करके ग्रहण करने वाली होने से अनेक है, वह तो जरूर एक नहीं है परन्तु निश्चय नय एक है, अनेक नहीं है क्योंकि उसका लक्षण "न तथा" है (अर्थात् जो कुछ व्यवहार नय कहता है उसका निषेध करना कि पदार्थ वैसा नहीं है यही निश्चय नय का लक्षण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिये कितने ही धर्मों के विवेचन क्यों न किये जायें सभी का निषेध करना मात्र ही निश्चय नय का एक कार्य है। अतएव वह एक ही है, अनेक नहीं हैं)।

भावार्थ—शंकाकार का कहना युक्ति संगत नहीं है कारण कि—पदार्थ में, अनन्त धर्म हैं उनमें से एक २ धर्म को विषय करने वाला व्यवहार तो अनेक है इसमें कोई संशय की बात नहीं है परन्तु एक एक व्यवहार के निषेध से निश्चय नय एक २ होकर अनेक होवे ऐसा नहीं बन सकता कारण कि न तथा' (ऐसा नहीं है) इस रूप से व्यवहार मात्र का प्रतिषेधक निश्चय नय सदा एक ही प्रकार का होने से एक ही होता है पर भिन्न २ व्यवहार के निषेध से एक २ होकर अनेक होता नहीं है अर्थात् सदा यावत् (सम्पूर्ण) व्यवहार का प्रतिषेधक होने से निश्चय नय एक ही है। इसलिये निश्चय नय का सूचक 'न तथा' ऐसा माना है तथा वह सदा एक ही प्रकार का रहता है अर्थात् अनेक व्यवहार के प्रतिषेध को विषय करने से निश्चय नय के विषय में नानापना (भिन्न-भिन्नपना) आता नहीं है। इसलिये वह नानारूप हो ही नहीं सकता।

संदृष्टिः कनकत्वं ताम्रोपाधेर्निवृत्तितो यादृक्।
अपरं तदपरमिह वा रुक्मोपाधेर्निवृत्तितस्तादृक् ॥६५८॥

अर्थ—निश्चय नय क्यों एक है इस विषय में सोने का दृष्टांत भी है। सोना तांबे की उपाधि की निवृत्ति से जिस प्रकार का भिन्न स्वर्णत्व है—वह जैसा है वैसा ही चांदी की उपाधि की निवृत्ति से भी उसी प्रकार का भिन्न स्वर्णपना है अथवा और २ अनेक उपाधियों की निवृत्ति से भी वैसा ही सोना है अर्थात् सोने में जो तांबा, पीतल, चांदी, कालिमा आदि उपाधियां हैं वे अनेक हैं परन्तु उनका अभाव होना अनेक नहीं है। किसी उपाधि का अभाव क्यों न हो वह अभाव एक ही रहेगा। हर एक उपाधि की निवृत्ति में सोना सदा सोना ही रहेगा।

भावार्थ—जिस प्रकार सुवर्णपना तांबे की उपाधि के अभाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से विवक्षित होता है वैसा ही चांदी आदि की उपाधि के अभाव से भी विवक्षित होता है अर्थात् जिस प्रकार पर-उपाधि के अभाव से शुद्ध-सुवर्णत्वसामान्य में अनेकता नहीं आती है उसी प्रकार भेद कल्पना रूप उपाधि के अभाव से, द्रव्यत्व सामान्य में भी अनेकता आ सकती नहीं है। इसलिये निश्चय नय में अनेकता कही नहीं जा सकती।

एतेन हतास्ते ये स्वात्मप्रज्ञापराधतः केचित् ।
अप्येकनिश्चयनयमनेकमिति सेवयन्ति यथा ॥६५९॥

अर्थ—इस कथन से वे पुरुष खण्डित किये गये हैं जो कि अपने ज्ञान के दोष से एक निश्चय नय को अनेक समझते हैं जैसे—

शुद्धद्रव्यार्थिक इति स्यादेकः शुद्धनिश्चयो नाम ।
अपरोऽशुद्धद्रव्यार्थिक इति तदशुद्धनिश्चयो नाम ॥६६०॥

अर्थ—एक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। उसी का नाम शुद्ध निश्चय नय है। दूसरा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है उसका नाम अशुद्ध निश्चय नय है। ऐसे निश्चय नय के दो भेद हैं।

इत्यादिकाश्च बहवो भेदा निश्चयनयस्य यस्य मते ।
स हि मिथ्यादृष्टिः स्यात् सर्वज्ञावमानितो नियमात् ॥६६१॥

अर्थ—और भी बहुत से भेद निश्चय नय के जिसके मत में है वह मिथ्यादृष्टि है और वह नियम से सर्वज्ञ की आज्ञा का उलङ्घन करता है।

भावार्थ—निश्चय नय के शुद्ध अशुद्ध आदि भेद कुछ भी नहीं है ऐसा जैन सिद्धान्त है। वह केवल निषेधात्मक एक है और अखण्ड सामान्य वस्तु का द्योतक है जो उसके भेद करता है वह सर्वज्ञ की आज्ञा का उलङ्घन करता है। अतएव वह मिथ्यादृष्टि है। अखण्ड सामान्य के एक २ अंश का द्योतक तो व्यवहार नय है वह अवश्य अनेक है।

पुनः भावार्थ—श्री द्रव्यसंग्रहादि दूसरे ग्रन्थों में जो शुद्ध द्रव्यार्थिक नय-अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय आदि भेद मिलते हैं वे पर्यायार्थिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नय (व्यवहार नय) के ही नामान्तर हैं ऐसा समझना—केवल शब्द का भेद है। आशय एक ही है तथा दूसरे ग्रन्थों में जो निमित्त के लिये-अर्थात् पर वस्तु के लिये व्यवहार नय लिखा है उन्हें निमित्त का कथन समझना। भाव उन आचार्यों का भी ऐसा ही है केवल कथन शैली का भेद है। और उसका रहस्य यह है कि जिन आचार्य को सामान्य भिन्न दिखलाना था, स्वभाव पर्याय भिन्न दिखलानी थी, विभाव पर्याय भिन्न दिखलानी थी, निमित्त का पर द्रव्य भिन्न दिखलाना था। उन आचार्यों को प्राथमिक शिष्य की पकड़ के लिये प्रयोजनवश करुणा बुद्धि से इतने नयों के भेद प्रभेद करने पड़े। मथन करने पर अन्त में उनका भी आशय वही निकलता है जो श्रीपंचाध्यायीकार ने वस्तु का स्वरूप नग्नरूप में उपस्थित किया है। गुरुगम से समझने पर सब का समन्वय सरल हो जाता है। इन भेदों को मानने वाले मिथ्यादृष्टि हैं इसका आशय यह है कि जो उन शब्दों का भाव ठीक पकड़ता है जैसे जिन ने राग को अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहा उसका भाव उन्हीं के वक्तव्य अनुसार राग को कहने वाली होने से असद्भूत व्यवहार नय समझे, शुद्ध द्रव्यार्थिक नय को स्वभाव पर्यायवाली कहने वाली होने से उपचरित सद्भूतव्यवहार नय समझें, व्यवहार नय का एक वस्तु का कर्तृत्व दूसरी में बतलाने के कारण से निमित्त का कथन समझे तो मिथ्यादृष्टि नहीं है क्योंकि उसने उन आचार्यों के आशय को ठीक पकड़ा है पर जो परवस्तु की व्यवहार नय को दूसरी वस्तु में कर्तृत्व रूप जिन शब्दों में लिखा है उन्हीं शब्दों में उसका अर्थ सत्यार्थ समझ ले तो मिथ्यादृष्टि है। द्रव्यार्थिक नय के अनेक भेद लिखने से सामान्य अनेक प्रकार का समझ ले तो मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि आशय के अनुसार है। शब्द तो वक्ता का अभिप्राय है। यदि अभिप्राय गलत पकड़ा गया तो मिथ्यादृष्टि है। यदि अभिप्राय ठीक पकड़ा गया तो मिथ्यादृष्टि नहीं है। ऐसा ग्रंथकार का आशय है। कहीं दूसरे आचार्यों को या किसी को मिथ्यादृष्टि कहने का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं है। वस्तु का निरूपण कड़े शब्दों में जरूर किया है किन्तु नग्न सत्यरूप में।

अगली भूमिका—अब वह समझाते हैं कि वस्तु उभयरूप है। अतः पहले वह दोनों नयों की परस्पर सापेक्षता से भली भांति जान लेनी चाहिये और जानकर फिर "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" द्वारा आत्मशुद्धि करनी चाहिये। उनके विकल्पों में अर्थात् पण्डिताई में ही नहीं अटके रहना चाहिये। कोरी पण्डिताई या केवल दूसरों को सुना देने में तो मान का पोषण है आत्महित नहीं है। ऐसा शिक्षात्मक उपदेश देते हैं।

दोनो नयों की सापेक्षता और उनके जानने का फल

इदमत्र तु तात्पर्यमधिगन्तव्यं चिदादि यद्वस्तु ।
व्यवहारनिश्चयाभ्यामविरुद्धं तथात्मशुद्धयर्थम् ॥६६२॥

अर्थ—यहां पर इतना ही तात्पर्य है कि जीवादिक जो भी पदार्थ हैं उनको व्यवहार और निश्चय नय के द्वारा अविरुद्ध रीति से अर्थात् परस्पर सापेक्ष (निरपेक्ष नहीं) जानना चाहिए और इस प्रकार जाने हुये वे पदार्थ आत्मशुद्धि के लिये निमित्त हो सकते हैं।

भावार्थ—सारांश यह है कि जिस प्रकार से निश्चय और व्यवहार में विरोध नहीं आवे उस प्रकार से परस्पर में अविरोध पूर्वक जीवादिक पदार्थों को निश्चय तथा व्यवहार द्वारा जानना कि जिस से वह ज्ञान ही आत्मा की शुद्धि के लिये उपयुक्त हो सके पर यह ध्यान रक्खें कि जीवादिक पदार्थों में व्यवहार निश्चय नयों को एक ही पदार्थ के चतुष्टय पर लगाये। तब वस्तु का वास्तविक ज्ञान आत्मा की शुद्धि के लिये प्रयुक्त होगा अन्यथा विपरीत हो जायेगा जैसे—राग क्या है किस नय का विषय है तो समझे कि यह आत्मा का भाव है। आत्मा के चतुष्टय में है। इसलिये इस पर नय लागू हो सकती है। नयभास नहीं—तथा क्योंकि वह नैमित्तिकभाव है—आगन्तुक है—क्षणिक है अतः व्यवहार नय लागू

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होगी। जब ऐसा समझेगा तो यह समझ लेगा कि यह भाव पुरुषार्थ द्वारा आत्मा से निकालकर आत्मा शुद्ध किया जाता है और सामान्य शुद्ध आत्मा जो निश्चय का विषय है वह शेष रह जायेगा। इस प्रकार दोनों नयों का ज्ञान परस्पर सापेक्ष आत्मशुद्धि के लिये सफल हो सकता है। किन्तु यदि स्ववस्तु के सब चतुष्टय को निश्चय समझे और परवस्तु के कथनों को सद्व्यवहार समझे। एक वस्तु का दूसरी में कर्तृत्वपना यही परस्पर सापेक्षता समझे तो वह नय ज्ञान नयाभास रूप में परिणत होकर दो द्रव्यों की चली आई एकत्वबुद्धि के दृढ़ अभ्यास को ही सिद्ध करेगा और मिथ्यात्व की पुष्टि में कारण होगा। अतः ग्रन्थकार ने इस श्लोक द्वारा मुमुक्षु को चेतावनी दी है कि वह बहुत जागृत होकर नयों का प्रयोग करे। पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में कहा है कि इस नय रूपी गहन वन को समझने के लिए गुरु ही शरण हैं। अन्यथा जिस प्रकार वनी में जीव खोया जाता है इस प्रकार नय का दुरुपयोग होने से उल्टा आत्म-अहित हो जाता है।

अगली भूमिका—पिछले श्लोक में ज्ञान की अपेक्षा उपदेश दिया था। अब श्रद्धा की अपेक्षा उपदेश देते हैं कि ज्ञान से दोनों नयों के विषय को जानकर व्यवहार के विषय को हेय करना चाहिये और निश्चय के विषय को उपादेय करना चाहिये क्योंकि निश्चय का विषय सामान्यमात्र वस्तु है। उसके अवलम्बन से ही निर्विकल्प होकर आत्म-सिद्धि होगी।

निश्चय नय की सफलता

अपि निश्चयस्य नियतं हेतुः सामान्यमात्रमिह वस्तु।
फलमात्मसिद्धिः स्यात् कर्मकलङ्कावमुक्तबोधात्मा ॥६६३॥

अर्थ—निश्चय नय का कारण नियम से सामान्यमात्र वस्तु है और सब कर्म कलंक से रहित ज्ञानमय आत्मा की सिद्धि होना यह निश्चय नय का फल है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाण—जीवों को यह शंका हो सकती है कि सब ग्रन्थों में तो परवस्तु पर व्यवहारनय और स्वचतुष्टय पर निश्चय नय लगाया है। पंचाध्यायीकार अपनी अलग की डुगडुगी बजाता है। इसी कारण बहुत से लोग इसे आगम प्रमाण न मानकर अप्रमाणिक ग्रन्थ कहते हैं पर यह उनकी बुद्धि का दोष है। कठिन और सूक्ष्म होने के कारण तथा गुरुगम न मिलने के कारण वे इसके रहस्य को नहीं समझ सके। इस ग्रन्थ का एक अक्षर भी अप्रमाणिक नहीं है। सब का सब श्री कुन्दकुन्द तथा श्री अमृतचन्द्र जी के अक्षरशः वक्तव्यानुसार है। देखिये परवस्तु पर लगाने वाले व्यवहार नय नहीं किन्तु नयाभास हैं इसका निरूपण स्वयं श्रीसमयसार जी में इसी पद्धति से है। गाथा ८४ में शिष्य ने दो द्रव्यों पर व्यवहार नय लगाया है। गुरुजी ने गाथा ८५. ८६ में उसका खंडन किया है। उसी प्रकार गाथा ९८ में शिष्य ने फिर दो द्रव्यों पर व्यवहार नय लगाया है। उसका खण्डन गुरु महाराज ने ९९ से १०८ तक किया है। ज्यों का त्यों वही भाव श्रीपञ्चाध्यायीकार ने यहां केवल कथन शैली बदलकर लिखा है। (२)अब यह जो आपका कहना है कि निश्चय का ऐसा कथन कहीं देखने में नहीं आया या निश्चय नय का 'नेति' लक्षण कहीं देखने में नहीं आया। श्रीसमयसार जी गाथा २७२ मूल में स्पष्ट "नेति" लक्षण लिखा है तथा २७५ की टीका के अन्तिम वाक्य में स्पष्ट लिखा है- तथा २७६-७७ के शीर्षक पर स्पष्ट लिखा है। वही शब्द और वही भाव ज्यों का त्यों श्रीपंचाध्यायीकार ने लिया है, केवल अधिक स्पष्टताके कारण कथन शैली बदली है। श्रीसमयसारजी गाथा६ में प्रमत्त अप्रमत्त का निषेध "नेति" नहीं तो और क्या है ? तथा गाथा ७ में स्वाभाविक गुणपर्यायों के भेद का निषेध "नेति" लक्षण नहीं तो और क्या है ? इस प्रकार यह निश्चयनय सब श्रीसमयसार मूल आगम की देन है। (३) राग आत्मा के चतुष्टय में है इसे निश्चय कहना चाहिये–व्यवहार नहीं। इस शंका का उत्तर श्री कुन्दकुन्द भगवान ने श्रीसमयसार गाथा ५० से ५५ तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब २६ भावों को आत्मा में कूड़ा कर्कट बताकर आत्ममहल से बाहर फेंका है। इस प्रकरण में स्पष्ट राग को व्यवहार कहा है। मूल द्रव्य में न पाये जाने वाली चीज को निश्चय कैसे कहा जा सकता है? वह तो व्यवहार ही है। (४) अरे राग तो राग हम तो क्षायिक भाव तक को व्यवहार कहते हैं तू तो राग से ही डर मया है। श्री नियमसार गा. ४१ और उसकी टीका में चारों भावों को व्यवहार कहकर आत्मा में निषेध किया है। श्रीसमयसार तथा नियमसार जी तो केवल त्रिकाली सामान्य को जो स्वतः सिद्ध वस्तु है उसी को निश्चय कहते हैं। औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक सब नैमित्तिक भावों को व्यवहार कहा है। यह परमागम है। (५) अब आपको यह शंका हो सकती है कि हजारों आगमों में तो परवस्तु को व्यवहार कहा है, एक में नहीं कहा तो क्या? ऐसा भी नहीं है। वे सिद्धान्त ग्रन्थ हैं। छः द्रव्यों का निरूपण करते हैं। उन्हें परस्पर निमित्त नैमित्तिक बतलाना होता है। वहां निमित्त नैमित्तिक का नाम व्यवहार है। वहां भी एक द्रव्य का दूसरे में कर्तृत्व व्यवहार नहीं है। यह भूल है। भाव सब जैन ग्रन्थों का एक ही है। गुरु गम से फिट विठाने की बात है।

भाई जिस प्रकार दुकान पर रात को बिध मिलाते वक्त कैश में फर्क नहीं होता, बही के जमा खर्च में फर्क होता है। उसी प्रकार यह ग्रन्थ तो कैश है। इसमें फर्क नहीं है। तेरी परस्पर की मिलान की भूल है। उसे ठीक करके ग्रन्थ पर आस्था बुद्धि रखकर ढूंढ तो मिलेगा। जिन्होंने ढूंढा है उन्होंने पाया है और जो विवाद में पड़ गये, उन्होंने खोया है। अच्छा हम एक बात और पूछते हैं कि यह ग्रन्थ तो सभी जैन विद्यालयों में पढ़ाया जाता है और कोर्स का निर्णय भारत के सब पण्डित मिलकर करते हैं तो क्या सब ने ऐसे अप्रमाणिक ग्रन्थ को कोर्स में और वह भी शास्त्री तथा आचार्य के कोर्स में रख दिया। राजकीय संस्कृत कालेज बनारस युनिवर्सिटी में भी यह ग्रन्थ कोर्स में नियुक्त है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थ अप्रमाणिक नहीं है किन्तु Pure (खालिस) अध्यात्मिक है और सूक्ष्म विवेचन होने से हरएक इसका पार तो पा नहीं सकता। झट अप्रमाणिक कह देता है। जगत् में ऐसी लोकरूढ़ि है कि आधी बुद्धि मुझ में है आंधी सारे जगत में। हर एक जीव अपने को सब से अधिक बुद्धिमान समझता है। भाई शान्त हो, धीरज रख, मान छोड़; गुरुगम को प्राप्त कर, सब सरल हो जायेगा। अगर अपने आप तत्त्व की प्राप्ति हो जाया करती तो सारा जगत ही ज्ञानी हो जाता। सम्यक्त्व कभी ज्ञानी गुरु की सानिध्य विना नहीं होता और क्षायिक तो साक्षात् केवली या श्रुतकेवली गुरु के निकट होता है। चाबी गुरुओं ने अपने ही हाथ में रक्खी है। वर्तमान में सद्गुरुदेव श्रीकानप्रभु का समागम मान छोड़कर करिये तो वे कृपानिधान हैं। सब मार्ग बतलादेंगे। हमने तो यह सब रहस्य उसी महापुरुष की चरणसेवा से पाया है। हम पर तो उनका चतुर्थकाल के तीर्थंकरवत् उपकार है। आपकी आप जानें हम तो उनका अहसान नहीं भूल सकते जिन्होंने संसार सागर तिरने का मार्ग हाथ पर रखकर दिखलाया है।

सातवां अवान्तर अधिकार

प्रमाण का स्वरूप ६६४ से ६६५ तक

प्रतिज्ञा

उक्तो व्यवहारनयस्तदनु नयो निश्चयः पृथक् पृथक्।
युगपद् द्वयं च मिलितं प्रमाणमिति लक्षणं वक्ष्ये।।६६४।।

अर्थ—व्यवहार नय का स्वरूप कहा। उसके पीछे निश्चय नय का भी स्वरूप कहा। दोनों ही नय भिन्न २ स्वरूप वाले हैं। जब एक साथ दोनों नय मिल जाते हैं तभी वह प्रमाण का स्वरूप कहलाता है। उस प्रमाण के लक्षण को कहूंगा।

विधिपूर्वः प्रतिषेधः प्रतिषेधपुरस्सरो विधिस्त्वनयोः।
मैत्री प्रमाणमिति वा स्वपराकारावगाहि यज्ज्ञानम् ।।६६५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—विधिपूर्वक प्रतिषेध होता है (अर्थात् विधि सापेक्ष निषेधात्मक ज्ञान को निश्चय नय कहते हैं) प्रतिषेध पूर्वक विधि होता है (अर्थात् निषेध सापेक्ष विधि ज्ञान को व्यवहार नय कहते हैं)। विधि और प्रतिषेध इन दोनों की जो मैत्री है (अर्थात् दोनों नयों का एक साथ रहना है) वही प्रमाण कहलाता है अथवा स्व पर के आकार (स्वरूप) को जानने वाला (निश्चय करने वाला) जो ज्ञान है, वह प्रमाण कहलाता है।

उसी का स्पष्टीकरण

अयमर्थोऽर्थविकल्पो ज्ञानं किल लक्षणं स्वतस्तस्य।
एकविकल्पो नयसादुभयविकल्पः प्रमाणमिति बोधः ॥६६६॥

अर्थ—ऊपर जो कहा गया है उसका खुलासा इस प्रकार है कि 'अर्थविकल्प ज्ञान' उस प्रमाण का स्वतः सिद्ध लक्षण है अर्थात् अर्थ के आकार रूप परिणमन करने वाला जो ज्ञान है वह प्रमाण का स्वयं सिद्ध स्वरूप है। अर्थ शब्द का अर्थ स्व पर विषय तथा विकल्प शब्द का अर्थ व्यवसाय है। इसलिये अर्थ विकल्प का अर्थ स्वपर व्यवसायात्मक भी होता है। स्व पर के निश्चय करने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। तथा जब एक विकल्पात्मक ज्ञान होता है अर्थात् सामान्य या विशेष किसी एक अंश को विषय करने वाला ज्ञान होता हैं तब वह नयाधीन (नयात्मक) ज्ञान कहलाता है। और जब वह ज्ञान उभय विकल्पात्मक (सामान्यविशेषात्मक) होता है अर्थात् पदार्थ के दोनों अंशों को विषय करता है तब वह प्रमाण रूप ज्ञान कहलाता है।

भावार्थ—मिथ्या ज्ञान में स्व पर का व्यवसाय (निश्चय) नहीं होता, अतः मिथ्या ज्ञानों को प्रमाण नहीं कहते। केवल सम्यग्ज्ञानियों के ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। वे ज्ञान पांच हैं। नय ये श्रुतज्ञान का भेद है। इसलिये वह श्रुतज्ञान में ही गर्भित हो सकता है पर मति, अवधि, मनः पर्यय और केवल ज्ञान में तो वह गर्भित नहीं हो सकता। मति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानादि चार ज्ञान स्वार्थ होते हैं और श्रुतज्ञान स्वार्थ तथा परार्थ दोनों प्रकार का होता है। ज्ञानात्मक को स्वार्थ तथा वचनात्मक को परार्थ कहते हैं। नय परार्थश्रुतज्ञान के भेद में गर्भित होता है अर्थात् जो परार्थ-श्रुत ज्ञान एक देश को विषय करने वाला हुआ तो उसको नय ज्ञान कहते हैं तथा जो वह परार्थश्रुत ज्ञान सर्वदेश को विषय करने वाला हुवा तो उसको प्रमाण ज्ञान कहते हैं। अब इसी को शंका समाधानों द्वारा पीसते हैं।

शंका (६६७ से ६६९ तक)

ननु चास्त्येकविकल्पोऽप्यविरुद्धोभयविकल्प एवास्ति ।
कथमिव तदेकसमये विरुद्धभावद्वयोर्विकल्पः स्यात् ॥६६७॥

शंका—एक विकल्प भी हो सकता है और अविरुद्ध दो धर्मवाला भी एक विकल्प हो सकता है अर्थात् अविरोधी दो धर्म तो एक साथ रह सकते हैं। उनका तो विकल्प भी हो सकता है। परन्तु एक समय में परस्पर विरुद्ध विधि निषेध रूप दो भावों का विकल्प किस प्रकार हो सकता है? नहीं हो सकता जैसे 'सत् नित्य अनित्य हैं ये तो परस्पर विरोधी हैं। ये दोनों बात एक साथ कैसे बन सकती है?

शंका चालू

अथ चेदस्ति, विकल्पो क्रमेण, युगपद्वा बलाद्वाच्यः ।
अथ चेत् क्रमेण नय इति भवति न नियमात्प्रमाणमिति दोषः ।६६८।

अर्थ—यदि कहो कि एक साथ विरुद्ध दो भावों का विकल्प हो सकता है तो हम पूछते हैं कि वह क्रम से हो सकता है या एक साथ ऐसा यहां आपको बताना होगा? यदि कहा जाय कि विरोधी दो धर्म क्रम से हो सकते हैं तो वह क्रम से होने वाला तो अस्तिनास्ति नामा नय ही कहा जायेगा, प्रमाण वह नियम से नहीं कहा जा सकता। यह दोष है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शंका चालू

युगपच्चेदथ न मिथो विरोधिनोर्योगपद्यं स्यात् ।
दृष्टिविरुद्धत्वादपि प्रकाशतमसोर्द्वयोरिति चेत् ॥६६९॥

अर्थ— यदि कहा जाय कि वे दोनों धर्म एक साथ हो सकते हैं तो यह बात बनती नहीं है कारण विरोधी धर्म एक साथ दो नहीं रह सकते। दो विरोधी धर्म एक साथ रहें इस विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण से विरोध आता है। जैसे प्रकाश और अंधकार दोनों ही विरोधी हैं। वे क्या एक साथ रहते हुये कभी किसी ने देखे हैं ?

शंकाकार का आशय

हम दूसरी पुस्तक में आप को यह बता चुके हैं कि सत् परस्पर दो विरोधी धर्मों वाले चार युगलों से गुंथा हुआ है और उनमें से प्रत्येक धर्म को कहने वाला एक २ नय है और अविरुद्ध रीति से दोनों धर्म रूप वस्तु को बताने वाला प्रमाण है। यहां प्रमाण के स्वरूप का प्रकरण है। प्रमाण का कहना है कि जो नित्य है वही अनित्य है। अब शंकाकार कहता है कि सत् नित्य है यह एक विकल्प तो ठीक या सत् अनित्य है यह एक विकल्प भी ठीक क्योंकि ये दोनों परस्पर विरोधी हैं एक जगह तो नहीं रह सकते. हां अलग २ रह सकते हैं। दूसरी बात वह कहता है कि जो अविरुद्ध दो धर्म हों वे भी एक जगह रह जाते हैं जैसे पानी मीठा भी है द्रवत्व भी है। पर जो परस्पर विरोधी धर्म हैं वे एक जगह कैसे रहेंगे ? जैसे पानी ठंडा है यह एक विकल्प ठीक है। कोई कहता है पानी गरम है यह भी एक विकल्प ठीक है। कोई कहता है पानी मीठा भी है द्रवत्व भी है, यह भी ठीक है। पर कोई यह कहे कि पानी ठन्डा भी है गरम भी है यह कैसे हो सकता है ? ये तो दोनों विरोधी हैं। दोनों में से एक ही रहेगा। कहीं अन्धकार है सो ठीक है, कहीं प्रकाश है सो ठीक है। पर एक ही जगह अंधकार और प्रकाश परस्पर विरोधी कैसे रह सकते हैं ? इस प्रकार सत् नित्य-अनित्य है, एक-अनेक है, तत् अतत् है, भेदाभेद है, ये चारों बातें तो परस्पर विरोधी हैं। ये कैसे बनसकती हैं ? ऐसा शंकाकार पूछता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाधान (६७० से ६७३ तक)

न यतो युक्तिविशेषाद्युगपद्वृत्तिर्विरोधिनामस्ति ।
सदसदनेकेषामिह भावाभावध्रुवाध्रुवाणां च ॥६७०॥

अर्थ—ऊपर की हुई शंका ठीक नहीं है। कारण कि युक्ति विशेष से विरोधी धर्मों की भी एक साथ वृत्ति रह सकती है। सत्-असत् (अस्ति-नास्ति) एक अनेक, भाव-अभाव (तत्-अतत्), नित्य-अनित्य धर्मों की एक पदार्थ में एक साथ वृत्ति रहती है।

अयमर्थो जीवादौ प्रकृतपरामर्शपूर्वकं ज्ञानम् ।
यदि वा सदभिज्ञानं यथा हि सोऽयं बलाद् द्वयामर्शि ॥६७१॥

अर्थ—ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका यह अर्थ है कि जीवादिक पदार्थों में उपर्युक्त चार युगलों के विचार पूर्वक (परस्पर अनुसंधान पूर्वक) जो ज्ञान है वह प्रमाण ज्ञान है। अथवा जैसे पदार्थ में जो प्रत्यभिज्ञान है वह बलपूर्वक सामान्य विशेष दोनों को ग्रहण करने वाला है। उसी प्रकार यह प्रमाण ज्ञान है। जैसे "यह वही है" इस प्रकार का ज्ञान एक वस्तु की सामान्य विशेष दोनों अवस्थाओं को ठीक एक समय में ग्रहण करता है।

सोऽयं जीवविशेषो यः सामान्येन सदिति वस्तुमयः ।
संस्कारस्य वशादिह सामान्यविशेषजं भवेज्ज्ञानम् ॥६७२॥

अर्थ—यह वही जीव विशेष है जो सामान्यता से सत्-मात्र वस्तु रूप है। इस प्रकार संस्कार के वश से सामान्यविशेषात्मक ज्ञान हो जाता है।

अस्त्युपयोगि ज्ञानं सामान्यविशेषयोः समं सम्यक् ।
आदर्शस्थानीयात् तस्य प्रतिबिम्बमात्रतोऽन्यस्य ॥६७३॥

अर्थ—सामान्य विशेष को एक साथ विषय करने वाला उपयोगात्मक ज्ञान भले प्रकार हो सकता है क्योंकि सामान्य दर्पण के समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है तथा विशेष प्रतिबिम्ब समान है। जिस प्रकार दर्पण और प्रतिबिम्ब इकट्ठे रहते हैं उसी प्रकार सामान्य विशेष मैत्रीपूर्वक इकट्ठे रहते हैं और जिस प्रकार दर्पण और दर्पण में रहने वाला प्रतिबिम्ब एक साथ जाना जाता है उसी प्रकार सामान्य विशेष एक साथ जाना जाता है।

समाधान का सार

समाधान में शिष्य को यह समझाते है कि भाई वस्तु स्वभाव में किसी का वश नहीं (१) सत् जैसे स्वभाव से स्वतः सिद्ध है वैसे ही वह स्वतः परिणमनशील भी है। स्वभाव के कारण उसमें नित्य धर्म है और परिणमन स्वभाव के कारण उसमें अनित्य धर्म है। मोटी दृष्टि से देखने पर विरोध दीखता है पर वास्तव में विरोध नहीं है। पदार्थ उभयात्मक है (२) उसी प्रकार प्रदेशों की अपेक्षा अखण्ड निरंशदेश है किन्तु गुण पर्यायादि लक्षण भेद से भिन्न २ है अतः अनेक भी है (३) उसी प्रकार स्वभाव से वही का वही रहता है और परिणाम स्वभाव से दूसरा ही दीखता है इस प्रकार तत्-अतत् दोनों विरोधी धर्म एक साथ रहते हैं। (४) सामान्य दृष्टि से वह सत् रूप दीखता है और विशेष दृष्टि से वही जीवादि रूप दीखता है। यद्यपि चारों युगल बोलने में विरोधी से हैं पर भाई तू ही अपने अनुभव से देख ! तुझे तू सत् रूप भी अनुभव में आयेगा और जीव रूप भी, वस्तु रूप भी अनुभव में आयेगा, परिणाम रूप भी। वही का वही भी अनुभव में आयेगा दूसरा भी। अखण्ड एक रूप भी अनुभव में आयेगा, गुण भेद रूप भी। ये जो परस्पर उभयात्मक वस्तु है यह वस्तु ही कुछ ऐसी है और ऐसा ही प्रमाण से उसका ठीक ठीक ज्ञान हो जाता है।

शंका

ननु चैवं नययुग्मं व्यस्तं नय एव न प्रमाणं स्यात्।
तदिह समस्तं योगात् प्रमाणमिति केवलं न नय ॥६७४॥

शंका—उपर्युक्त उत्तर सुनकर शिष्य कहता है कि इस कथन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से तो यह अर्थ निकला कि दोनों ही नय जब भिन्न २ प्रयुक्त किये जाते हैं तब वे नय ही हैं जैसे सत् नित्य है या सत् अनित्य है प्रमाण नहीं। और वे ही दोनों नय जब मिलाकर एक साथ प्रयोग में लाये जाते हैं जैसे सत् नित्यानित्य है तब वह केवल प्रमाण कहलाता है नय नहीं। क्या यह ठीक है ?

भावार्थ—जिस प्रकार एक एक पैसा भिन्न २ होता है और उन का मिलाकर एक रुपया हो जाता है। उसी प्रकार द्रव्य के प्रत्येक अवयव को एक २ नय जानता है। यदि उन सब अवयवों के ज्ञान को मिलाकर इकठ्ठा कर दिया जाय तो क्या प्रमाणज्ञान हो जायेगा ? ऐसा शिष्य पूछता है। उसके उत्तर में उसे समझाते हैं कि ऐसा नहीं है क्योंकि नय प्रत्येक अंग को स्वतन्त्र विरोध रूप से जानता है जैसे स्वभाव को जानने वाली नय द्रव्य को नित्य ही ज्ञान कराती है। परिणाम को जानने वाली नय द्रव्य को अनित्य ही ज्ञान कराती है। प्रदेशों को जानने वाली नय एक २ प्रदेश की भिन्नता का ज्ञान कराती है। इस प्रकार अनन्त धर्मों का ज्ञान अनन्त नय कराते हैं पर वे सब मिलकर भी प्रमाण ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि प्रमाण ज्ञान की दृष्टि में अवयव भेद ही नहीं है। वह तो ज्ञान ही एक भिन्न जाति का है। वह तो सम्पूर्ण वस्तु को सब धर्मों की मैत्रीपूर्वक एकदम इकठ्ठा जान लेता है। नयज्ञान चीज ही और है। प्रमाण ज्ञान चीज ही और है। दोनों के नाम, लक्षण फल इत्यादि सब भिन्न २ हैं। इस प्रकार अब उसे समझाते हैं:—

समाधान ६७५ से ६८२ तक

तन्न यतो नययोगादतिरिक्तरसान्तरं प्रमाणमिदम् ।
लक्षणविषयोदाहृतिहेतुफलाख्यादिभेदभिन्नत्वात् ॥६७५॥

अर्थ——ऐसा नहीं है क्योंकि नयों के मिलने से यह प्रमाण ज्ञान भिन्न जाति का ज्ञान है। लक्षण[१], विषय[२], उदाहरण[३], हेतु[४], फल[५], नाम[६], भेद[७] आदिक से प्रमाण में नयों से भेद की भिन्नता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(नयों के लक्षण आदि पहले कह ही आये हैं। प्रमाण के अब नीचे क्रमशः दिखलाते हैं)।

प्रमाण का (१) लक्षण (२) विषय (३) उदाहरण

तत्रोक्तं लक्षणमिह सर्वस्वग्राहकं प्रमाणमिति ।
विषयो वस्तुसमस्तं निरंशदेशादिभूरुदाहरणम् ॥६७६॥

अर्थ—ऊपर कहे हुवों में से प्रमाण का लक्षण 'सब अंशों को ग्रहण करना' है। प्रमाण का विषय समस्त वस्तु है। प्रमाण का उदाहरण भेद रहित देशादियुक्त पृथ्वी है।

प्रमाण का (४) हेतु

हेतुस्तत्त्वबुभुत्सा संदिग्धस्याथवा च बालस्य ।
सार्थमनेकं द्रव्यं हस्तामलकवदवेतुकामस्य ॥६७७॥

अर्थ—परस्पर विरोधी अनेक धर्मविशिष्ट द्रव्य को हाथ में रक्खे हुये आमले के समान भले प्रकार से जानने की इच्छा रखने वाले संदिग्ध अथवा अज्ञात पुरुष के जानने की इच्छा का होना—प्रमाण की प्रवृत्ति में कारण है।

प्रमाण का (५) फल (६) नाम (७) भेद

फलमस्यानुभवः स्यात्समक्षमिव सर्ववस्तुजातस्य ।
आख्या प्रमाणामिति किल भेदः प्रत्यक्षमथ परोक्षं च ॥६७८॥

अर्थ—सम्पूर्ण वस्तु मात्र का प्रत्यक्ष के समान अनुभव होना ही प्रमाण का फल है। प्रमाण का नाम प्रमाण है। प्रत्यक्ष और परोक्ष उसके दो भेद हैं।

ज्ञानविशेषो नय इति ज्ञानविशेषः प्रमाणमिति नियमात् ।
उभयोरन्तर्भेदो विषयविशेषान्न वस्तुतो भेदः ॥६७९॥

अर्थ—नियम से नय भी ज्ञान विशेष है। प्रमाण भी ज्ञान विशेष है। दोनों में विषय विशेष की अपेक्षा से ही भेद है। जानने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य वस्तु में भेद नहीं है (अर्थात् जिस वस्तु को नय जानता है उसी वस्तु को प्रमाण जानता है। उस वस्तु के एक अंश को नय जानता है, सम्पूर्ण वस्तु को प्रमाण जानता है यह अन्तर है)।

स यथा विषयविशेषो, द्रव्यैकांशो नयस्य, योऽन्यतमः ।
सोऽप्यपरस्तदपर इह निखिलं विषयः प्रमाणजातस्य ॥६८०॥

अर्थ—प्रमाण और नय में विषय भेद इस प्रकार है:—द्रव्य के अनन्त अंशों में से कोई सा विवक्षित अंश नय का विषय है। वह अंश, उससे दूसरा अंश, उससे भी दूसरा अंश, उससे भी दूसरा अंश अर्थात् सब अंश अथवा अनन्त गुणात्मक समस्त ही वस्तु प्रमाण का विषय है।

यदनेकनयसमूहे संग्रहकरणादनेकधर्मत्वम् ।
तत्सदपि न सदिव यतस्तदनेकत्वं विरुद्धधर्ममयम् ॥६८१॥

भूमिका—शंकाकार ने श्लोक ६७४ में कहा था कि जब वस्तु के एक एक अंश को विषय करने वाला नय है तो अनेक नयों का समूह होने पर उससे ही अनेकधर्मता प्रमाण में आ जायेगी अर्थात् प्रमाण स्वतन्त्र कोई ज्ञान विशेष न माना जाय। अनेक नयों के सामूहिक ज्ञान को ही प्रमाण कहा जाय तो क्या हानि है? आचार्य उत्तर देते हैं कि यह आशंका ठीक नहीं है क्योंकि:—

अर्थ—जो अनेक नयों के समूह में संग्रह करने से अनेकधर्मपना प्राप्त होता है वह सम्पूर्ण सत् होता हुवा भी अखण्ड सत् नहीं है क्योंकि वह अनेकता विरुद्ध धर्ममय होगी··· [कारण नय सभी एक दूसरे से प्रतिपक्ष धर्मों को ग्रहण करते हैं किन्तु सत् तो सब धर्मों का मैत्री रूप से अखण्ड पिण्ड है। प्रमाण ही उन अनेक धर्मों को अविरुद्ध रूप से ग्रहण करता है। अतः वह भिन्न जाति का ज्ञान ही है। सोई कहते हैं:—]

यदनेकांशग्राहकमिह प्रमाणं न प्रत्यनीकतया ।
प्रत्युतमैत्रीभावादिति नयभेददः प्रभिन्नं स्यात् ॥६८२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—किन्तु प्रमाण जो अनेक अंशों का ग्रहण करता है सो वह विरुद्ध रीति से नहीं करता है किन्तु परस्पर मैत्रीभाव पूर्वक ही उन धर्मों को ग्रहण करता है। इसलिये नय भेद से (नय ज्ञान से) यह प्रमाण भेद (प्रमाण ज्ञान) भिन्न ही है।

प्रमाण ज्ञान और नय ज्ञान में अन्तर

प्रमाण ज्ञान और नय ज्ञान में इस प्रकार अन्तर है (१) प्रमाण वस्तु के सब धर्मों का ग्राहक है—नय वस्तु के एक धर्म का ग्राहक है। (२) प्रमाण का विषय समस्य वस्तु है—नय का विषय वस्तु का एक अंश है (३) प्रमाण का उदाहरण देशादियुक्त अखण्ड पृथ्वी है—नय का दृष्टांत उसका एक देश है। (४) प्रमाण का हेतु सम्पूर्ण वस्तु के जानने की इच्छा है—नय का हेतु एक अंश के जानने की इच्छा है। (५) प्रमाण का फल समस्त वस्तु बोध है—नय का फल वस्तु का एक देश बोध है। (६) प्रमाण नय शब्द भी जुदा जुदा हैं। (७) प्रमाण के प्रत्यक्ष परोक्ष भेद प्रभेद हैं—नय के द्रव्यार्थिक पर्यायर्थिक भेद प्रभेद हैं। (८) प्रमाण सब धर्मों को परस्पर मैत्री भाव से-अविरुद्धपने से युगपत ग्रहण करता है। नय सब धर्मों को परस्पर विरुद्धपने से क्रमशः ग्रहण करता है। इसलिये प्रमाण और नय दोनों ज्ञान जुदा जुदा हैं। उनमें से किसी एक का लोप करना सर्व लोप के प्रसंग का हेतु है। नय के अभाव में प्रमाण व्यवस्था नहीं बन सकती और प्रमाण के अभाव में नय व्यवस्था भी नहीं बन सकती। प्रत्येक नय एक २ धर्म को विरुद्ध रीति से ग्रहण करता है परन्तु प्रमाण वस्तु के सर्वांशों को अविरुद्धता से ग्रहण करता है। इसका कारण यह है कि प्रमाण सब अंशों को विषय करने वाला एक ही ज्ञान है। भिन्न २ ज्ञान ही प्रत्येक अंश को विवक्षता से ग्रहण कर सकते हैं। जैसे एक ज्ञान रूप को ही जानता है। दूसरा रस को ही जानता है। तीसरा गंध को ही जानता है। चौथा स्पर्श को ही जानता है। ये चारों ही ज्ञान परस्पर विरुद्ध है क्योंकि विरुद्ध विषयों को विषय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हैं परन्तु रूप, रस, गंध, स्पर्श, चारों का समुदायात्मक जो एक ज्ञान होगा वह अविरुद्ध ही होगा। यही दृष्टान्त प्रमाण नय में सुघटित कर लेना चाहिये। तथा पदार्थ का नित्यांश उसके अनित्यांश का विरोधी है, उसी प्रकार अनित्यांश उसके नित्यांश का विरोधी है, परन्तु दोनों मिलकर ही पदार्थ स्वरूप के साधक हैं। इसका कारण यही है कि प्रत्येक पक्ष का स्वतन्त्र ज्ञान द्वितीय पक्ष का विरोधी है परन्तु उभय पक्ष का समुदायात्मक ज्ञान परस्पर विरुद्ध दीखता हुवा भी अविरुद्ध है। अतः नय ज्ञान और प्रमाण ज्ञान भिन्न २ जाति के ज्ञान हैं।

अगली भूमिका—वस्तु सामान्य स्वरूप से है यह एक अस्ति भंग है। वस्तु विशेष रूप से नहीं है यह एक नास्ति भंग है। और जब दोनों स्वरूप को वक्ता को क्रम से कहना होता है तो तीसरा भंग 'अस्ति-नास्ति' प्रयोग करते हैं। ध्यान रखिये यह अस्तिनास्ति शब्द तो एक साथ बोला जाता है पर सूचक दोनों स्वभावों का क्रमशः है। और जब वक्ता को दोनों धर्मों को युगपत कहना होता है वो दोनों धर्म एक साथ कहे नहीं जा सकते अतः अवक्तव्य शब्द का प्रयोग करना पड़ता है। यह चौथा नय है। ये चारों भंग वस्तु के एक २ अंश को कहते हैं। सारी वस्तु को नहीं कह सकते। प्रमाण सारी वस्तु को जोड़ रूप से कहता है जैसे जो स्वरूप से अस्ति है वही पररूप से नास्ति है। प्रमाण दोनों विरोधी धर्मों को युगपत् ग्रहण भी करता है, कहता भी है और एक वस्तु में अविरोध पूर्वक स्थापना भी करता है। इस प्रकार इन चारों भंगों में और प्रमाण में अन्तर है। शंकाकार इस अन्तर को न समझता हुआ गुरु से इनका अन्तर जानना चाहता है वह पूछता है कि यह नियम है कि नय तो वस्तु के एक धर्म को ही कहता है और प्रमाण दोनों धर्मों को कहता है। फिर यह अस्तिनास्ति भंग नय कहां रहा? यह तो प्रमाण होना चाहिये। यदि यह नय है तो इसमें एक अंगता सिद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करें। यदि यह दोनों धर्मों को कहने वाला है तो फिर यही प्रमाण हो गया। प्रमाण इससे भिन्न क्या वस्तु है अर्थात् फिर इसमें और प्रमाण में क्या अन्तर है। यदि यह दोनों स्वरूपों को क्रमशः कहता है तो क्रमशः तो पहला अस्ति भंग और दूसरा नास्ति भंग कहते ही हैं। उनके अतिरिक्त इसमें और क्या विशेषता आई तथा यदि वह अस्ति-नास्ति भंग दोनों धर्मों को क्रमशः कहने के कारण प्रमाण ज्ञान नहीं है तो चौथा अवक्तव्य भंग तो दोनों धर्मों को इकट्ठा कहता है वह प्रमाण हो गया। उसमें और प्रमाण में क्या अन्तर रहा। इस प्रकार शंकाकार अगली शंकाओं में चारों नयों के स्वरूप को, प्रमाण के स्वरूप को तथा उनके अन्तर को जानना चाहता है।

शंका ६८३ से ६८६ तक

ननु युगपदुच्यमानं नययुग्मं तद्यथास्ति नास्तीति ।
एको भंगः, कथमयमेकांशग्राहको नयो नान्यत् ? ॥६८३॥

शंका—जहां दो नय एक साथ बोले जाते हैं जैसे 'अस्तिनास्ति' ये अस्तिनास्ति शब्द दोनों नय के विषय को एक साथ सूचित करता है। फिर यह एक भंग एक अंश का ग्रहण करने वाला नय कैसे कहा जा सकता है (क्योंकि इसमें अस्ति नास्ति ऐसे दो अंश आ चुके हैं) ? इसे प्रमाण क्यों नहीं कहा जाता ?

शंका चालू

अपि चास्ति न चास्ति सममेकोक्त्या प्रमाणनाशः स्यात् ।
अथ च क्रमेण यदि वा स्वस्य रिपुः स्वयमहो स्वनाशाय ॥६८४॥

अर्थ—दूसरी बात यह भी है कि 'अस्ति और नास्ति' यह एक साथ कहे जाते हैं तो फिर प्रमाण का नाश ही हो जायगा (कारण अस्ति नास्ति को एक साथ कहने वाला एक भंग ही है, उसी से कार्य चल जाता है, फिर प्रमाण का लोप ही समझना चाहिये अथवा यह कहा जाये कि अस्तिनास्ति भंग तो स्वरूप को क्रम से कहता है इसलिये यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नय हैं प्रमाण नहीं तो यह कहना अपने नाश के लिये स्वयं अपना शत्रु है (कारण क्रम से तो आप पहले एक अस्ति भंग जुदा कह आये हैं और एक नास्ति भंग भी जुदा कह आये हैं। यह अस्ति नास्ति क्रम से कहने पर तो कोई नई बात नहीं बनती) या उन दोनों नयों को मान लो या इस एक को मान लो।

शंका चालू

अथवावक्तव्यमयो वक्तुमशक्यात्समं स चेद्भंगः।
पूर्वापरबाधायाः कुतः प्रमाणात्प्रमाणमिह सिद्ध्येत् ॥६८५॥

अर्थ—अथवा यदि यह कहा जाय कि दोनों धर्म एक साथ नहीं कहे जा सकते इसलिये अवक्तव्यमय भंग है तो ऐसा मानने में पूर्वापर बाधा है। फिर किस प्रमाण से प्रमाण की सिद्धि हो सकती है? अर्थात् प्रमाण तो दोनों धर्मों को इकट्ठा ही मानता है और इकट्ठा ही कहता है और आप कहते हैं कि दोनों धर्म अवक्तव्य हैं इसलिये अवक्तव्यमय नय बना है तो जब प्रमाण में दोनों धर्मों को एक साथ कह ही नहीं सकते तो प्रमाण का अस्तित्व ही नहीं रहता है। फिर उसको सिद्ध ही कैसे करोगे?

शंका

इदमपि वस्तुमयुक्तं वक्ता नय एव न प्रमाणमिह।
मूलविनाशाय यतोऽवक्तरि किल चेदवाच्यता दोषः ॥६८६॥

अर्थ—यदि उसके उत्तर में यह कहा जाय कि बोलने वाला नय ही होता है प्रमाण नहीं तो ऐसा कथन भी मूल का विघात करने वाला है क्योंकि प्रमाण को अवक्तव्य (नहीं बोलने वाला) मान लेने पर अवाच्यता का दोष आता है (जब प्रमाण अवक्तव्य है तो उसके अंश नय भी सब अवक्तव्य हुवे फिर तो कुछ कथन ही न हो सकेगा)?

समाधान ६८७ से ६९५ तक

नैवं यतः प्रमाणं भंगध्वंसादभंगबोधवपुः।
भङ्गात्मको नय यावानिह तदशंधर्मत्वात् ॥६८७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि प्रमाण भंगों के नाश से अभंगज्ञानमय है (प्रमाण ज्ञान भंगमय नहीं होता है। अभंग ज्ञानमय होता है) हां जितना भी नय है वे अवश्य भंगात्मक ही होते हैं क्योंकि वे उस प्रमाण के अंश हैं।

स यथास्ति च नास्तीति च क्रमेण युगपच्च वानयोर्भंगः।
अपि वाऽवक्तव्यमिदं नयो विकल्पानतिक्रमादेव ॥६८८॥

अर्थ—खुलासा इस प्रकार है—एक 'अस्ति' भंग, और एक नास्ति भंग। एक इन दोनों के स्वरूप को क्रम से बताने वाला किन्तु उच्चारण एक साथ किया गया संयोग रूप 'अस्तिनास्ति' भंग, एक दोनों धर्मों को युगपत कहने वाला 'अवक्तव्य' भंग-भंग ही हैं। ये सभी भंग नय रूप हैं क्योंकि इन सब भंगों में एक २ विकल्प का उल्लङ्घन नहीं है।

तत्रास्ति च नास्ति समं भङ्गस्यास्यैकधर्मता नियमात्।
न पुनः प्रमाणमिव किल विरुद्धधर्मद्वयाधिरूढ़त्वम् ॥६८९॥

अर्थ—उन भंगों में 'अस्तिनास्ति' एक साथ बोले हुये इस एक भंग के नियम से एक धर्मता है। वह प्रमाण के समान नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रमाण एक ही समय में दो विरुद्ध धर्मों को मैत्रीभाव से ग्रहण करता है (उस प्रकार यह भंग विरुद्ध दो धर्मों का मैत्रीभाव से ग्रहण नहीं करता है किन्तु पहले दूसरे भंग की मिली हुई तीसरी ही अवस्था का प्रतिपादन क्रम से करता है। इसलिए वह ज्ञान भी अंशरूप ही है प्रमाण रूप नहीं है)।

अयमर्थश्चार्थवशादथ च विवक्षावशात्तदंशत्वम्।
युगपदिदं कथ्यमानं क्रमाज्ज्ञेयं तथापि तत्स यथा ॥६९०॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए कथन का यह आशय है कि प्रयोजनवश अथवा विवक्षावश युगपत बोला हुआ भी यह भंग (स्वरूप का ग्राहक) क्रम से ही जानना चाहिए वह इस प्रकार ('अस्तिनास्ति' यह शब्द एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साथ बोला जाता है पर स्वरूप इसमें क्रम से ही कहा गया है वही अब दिखलाते हैं) :—

अस्ति स्वरूपसिद्धेर्नास्ति च पररूपसिद्धयभावाच्च ।
अपरस्योभयरूपादितस्ततः कथितमस्ति नास्तीति ॥६९१॥

अर्थ—वस्तु निजरूप के सद्भाव की अपेक्षा से 'अस्ति' है यह पहला भंग है। वस्तु पररूप के सद्भाव के अभाव की अपेक्षा से नास्ति' है यह दूसरा भंग है। तीसरे भंग की अपेक्षा से क्रम से वस्तु स्वरूप से है और पर रूप से नहीं है अर्थात् वस्तु क्रम से दोनों रूप से है। इसलिये यह शब्द क्रमसे 'अस्ति नास्ति' रूप कहा गया है।

भावार्थ—अर्थात् (१) स्यात् अस्ति (२) स्यात्नास्ति (३) स्यात् अस्ति नस्ति ये तीन भंग स्वरूप, पररूप, क्रम से स्वरूप पररूप की अपेक्षा से जानने चाहिये। प्रमाण का स्वरूप इन भंगों से जुदा ही है।

उक्तं प्रमाणदर्शनमस्ति स योऽयं हि नस्तिमानार्थः ।
भवतीदमुदाहरणं न कथञ्चिद्वै प्रमाणतोऽन्यत्र ॥६९२॥

अर्थ—प्रमाण का दृष्टान्त इस प्रकार कहा गया है कि 'जो पदार्थ अस्ति रूप है वही पदार्थ यह नास्ति रूप है' (देखिये तीसरे भंग में स्वरूप से अस्ति और पर रूप से नास्ति क्रम से कहा गया था यहां प्रमाण में दोनों धर्मों का प्रतिपादन समकाल में किया है।) "जो अस्ति रूप है वही नास्ति रूप है" यह उदाहरण प्रमाण को छोड़ कर अन्यंत्र किसी नय में किसी प्रकार भी घटित नहीं होता है अर्थात् नयों द्वारा ऐसा विवेचन नहीं किया जा सकता है। अब नयों से युगपत ऐसा विवेचन क्यों नहीं किया जा सकता है उसी को स्पष्ट करते हैं—

तदभिज्ञानं हि यथा वक्तुमशक्यात् समं नयस्य यतः ।
अपि तुर्यो नयभंगस्तत्वावक्तव्यतां श्रितस्तस्मात् ॥६९३॥

अर्थ—इसका खुलासा (कारण) यह है कि नय एक साथ दो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विरुद्ध धर्मों का प्रतिपादन करने में असमर्थ है। इसलिये एक साथ दो धर्मों के कहने की विवक्षा में 'अवक्तव्य' नामक चौथा भंग होता है (यह भंग भी एक अशांत्मक है। जो नहीं बोला जा सके उसे अवक्तव्य कहते हैं। एक समय में एक ही धर्म का विवेचन हो सकता है, दो का नहीं)।

न पुनर्वक्तुमशक्यं युगपद्धर्मद्वयं प्रमाणस्य।
क्रमवर्ती केवलमिह नयः प्रमाणं न तद्वदिह यस्मात् ॥६९४॥

अर्थ—किन्तु प्रमाण एक साथ विरुद्ध दो धर्मों का कथन करने में असमर्थ नहीं है क्योंकि क्रमवर्ती केवल नय है। नय के समान प्रमाण क्रमवर्ती नहीं है (अर्थात् प्रमाण चतुर्थ नय के समान अवक्तव्य भी नहीं है और तृतीय नय के समान वह क्रम से भी दो धर्मों का प्रतिपादन नहीं करता है किन्तु दोनों धर्मों का समकाल ही प्रतिपादन करता है। इसलिये नय से प्रमाण भिन्न ही है)।

उपसंहार

यत्किल पुनः प्रमाणं वक्तुमलं वस्तुजातमिह यावत्।
सदसदनेकैकमथो नित्यानित्यादिकं च युगपदिति ॥६९५॥

अर्थ—तथा जो प्रमाण है वह सत्-असत् (अस्ति-नास्ति), एक-अनेक, नित्य-अनित्य, तत्-अतत् (भाव-अभाव), वस्तु के सम्पूर्ण धर्मों को एक साथ कहने में समर्थ हैं।

शंका समाधान का सार

शंकाकार ने श्लो. ६८३ से ६८६ में जो शंका की थी उसके उत्तर में ग्रन्थकार ने अस्ति, नास्ति, अस्ति-नास्ति, अवक्तव्य चारों नयों का विषय समझाया तथा उनसे भिन्न प्रमाण का विषय समझाया। सार यह है कि नय वस्तु के धर्मों को क्रम से विरुद्ध रूप से ग्रहण करने के कारण एक २ भंग ही है और प्रमाण उन सब धर्मों को अविरुद्ध रूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से एक समय में ग्रहण करने वाला भिन्न जाति का ज्ञान है। यह दोनों में बड़ा भारी अन्तर है। अस्ति, नास्ति आदि भंगों से वस्तु के एक २ अंश का ज्ञान होता है। प्रमाण से सम्पूर्ण वस्तु का ज्ञान होता है।

नोट—यहां तक प्रमाण का स्वरूप कह कर अब उसके भेदों पर विचार करते हैं:—

आठवां अवान्तर अधिकार

प्रमाण के भेदों का निरूपण (६९६ से ७१९ तक)

अथ तद्द्विधा प्रमाणं ज्ञानं प्रत्यक्षमथ परोक्षं च।
असहायं प्रत्यक्षं भवति परोक्षं सहायसापेक्षम् ॥६९६॥

अर्थ—प्रमाण रूप ज्ञान के दो भेद हैं (१) प्रत्यक्ष (२) परोक्ष। जो ज्ञान किसी की सहायता* की अपेक्षा नहीं रखता वह प्रत्यक्ष है। जो ज्ञान दूसरों की सहायता की अपेक्षा रखता है वह परोक्ष है।

प्रत्यक्षं द्विविधं तत्सकलप्रत्यक्षमक्षयं ज्ञानम्।
क्षायोपशमिकमपरं देशप्रत्यक्षमक्षयं क्षयि च ॥६९७॥

अर्थ—प्रत्यक्ष दो प्रकार है (१) सकल प्रत्यक्ष (२)दूसरा विकल प्रत्यक्ष। जो अविनाशी (केवल) ज्ञान है वह सकल प्रत्यक्ष है। दूसरा विकल प्रत्यक्ष अर्थात् देश प्रत्यक्ष कर्मों के क्षयोपशम से होता है किन्तु कर्मों के क्षय से नहीं होता तथा विनाशीक भी है (अस्ति नास्ति से निरूपण करने की ग्रन्थकार की प्रकृति है तथा अध्यात्म ग्रंथ है अतः अक्षयं क्षयि का अप्रतिपाती तथा प्रतिपाती अर्थ नहीं है तथा उसका प्रकरण भी नहीं है)।

---

* सहाय का अर्थ निमित्त मात्र है। सहाय-असर्-प्रभाव, बलाधान, प्रेरक कर्ता आदि शब्दों का अर्थ जैन धर्म में निमित्तमात्र होता है—देखिये इष्टोपदेश श्लोक ३५ तथा तत्वार्थसार तीसरा अजीव अधिकार श्लोक नम्बर ४३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अयमर्थो यज्ज्ञानं समस्तकर्मक्षयोद्भवं साक्षात् ।
प्रत्यक्षं क्षायिकमिदमक्षातीतं सुखं तदक्षयिकम् ॥६९८॥

अर्थ—इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि जो ज्ञान समस्त (द्रव्य तथा भाव) कर्मों के क्षय से उत्पन्न होता है, साक्षात् अर्थात् आत्ममात्र सापेक्ष है, अतीन्द्रिय सुख रूप है, अविनाशी है, वह क्षायिक ज्ञान (केवलज्ञान) प्रत्यक्ष है ।

देशप्रत्यक्षमिहाप्यवधिमनः पर्ययं च यज्ज्ञानम् ।
देशं नोइन्द्रियमन उत्थात् प्रत्यक्षमितरनिरपेक्षात् ॥६९९॥

अर्थ—जो अवधि और मनः पर्याय ज्ञान हैं वे देश प्रत्यक्ष हैं । देश प्रत्यक्ष उन्हें क्यों कहते हैं? देश तो इसलिये कहते हैं कि ये नोइन्द्रिय रूप मन से उत्पन्न होते हैं और प्रत्यक्ष इसलिये कहते हैं कि ये दूसरी इन्द्रियों की सहायता से निरपेक्ष हैं । (मन का अवलम्बन बारहवें गुणस्थान तक हर समय रहता ही है अन्यथा केवली हो जाय—यही तो छद्मस्थ और केवली में अन्तर है) ।

आभिनिबोधिकबोधो विषयविषयिसन्निकर्षजस्तस्मात् ।
भवति परोक्षं नियमादपि च मतिपुरस्सरं श्रुतं ज्ञानम् ॥७००॥

अर्थ—मति ज्ञान विषय और विषयी के सन्निकर्ष से उत्पन्न होता है । इसलिये वह नियम से परोक्ष है और मतिज्ञान पूर्वक श्रुत-ज्ञान होता है अतः वह भी परोक्ष है ।

छद्मस्थावस्थायामावरणेन्द्रियसहायसापेक्षम् ।
यावज्ज्ञानचतुष्टयमर्थात् सर्वं परोक्षमिव वाच्यम् ॥७०१॥

अर्थ—अल्पज्ञ अवस्था में जितने भी ज्ञान है—मति, श्रुत, अवधि मनःपर्यय चारों ही आवरण और इन्द्रियों की सहायता की अपेक्षा रखते हैं इसलिये इन चारों ही ज्ञानों को वास्तव में परोक्ष के समान ही कहना चाहिये (अर्थात् मति श्रुत तो परोक्ष कहे ही गये हैं परन्तु अवधि मनः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्यय भी इन्द्रिय और आवरण की अपेक्षा रखते हैं। इसलिये वे भी परोक्ष तुल्य ही हैं–सहाय अर्थात् निमित्तमात्र)।

अवधिमनःपर्ययचिद्द्वैतं प्रत्यक्षमेकदेशत्वात् ।
केवलमिदमुपचारादथ च, विवक्षावशान्न चान्वर्थात् ॥७०२॥

अर्थ—अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान ये दो ज्ञान एक देश प्रत्यक्ष कहे गये हैं परन्तु इनमें यह प्रत्यक्षता केवल उपचार से और विवक्षावश ही घटती है। वास्तव में ये प्रत्यक्ष नहीं हैं। (अध्यात्मदृष्टि में निश्चय से ये परोक्ष कहे जाते हैं। श्री कुन्दकुन्द आदि आचार्यों ने प्रत्यक्ष तो एक स्वभाव ज्ञान को ही कहा है। सिद्धांत में व्यवहार से एक-देश आत्मप्रत्यक्ष भी कहे जाते हैं। जैन धर्म तो विवक्षाधीन है। व्यवहार अपेक्षाओं को सिद्धांत कहते हैं। निश्चय अपेक्षाओं को अध्यात्म कहते हैं)।

भावार्थ—अवधि और मनः पर्यय ज्ञान को जो एक देश प्रत्यक्ष कहा है वह केवल उपचार से अथवा विवक्षावश कहा है कारण कि मति-श्रुत की तरह ये दोनों इन्द्रियसापेक्ष नहीं हैं परन्तु अतीन्द्रिय है तथा अपने अपने विषय को एक देश से जितना जानते हैं उतना सकल प्रत्यक्ष की तरह ही जानते हैं इस विवक्षावश से उनको देशप्रत्यक्ष कहा है परन्तु वास्तव में वे क्षायोपशमिक ज्ञान ही हैं इसलिये प्रत्यक्षता का श्रीकुन्द-कुन्दकृत असद्भाय लक्षण न घटने से उन दोनों ज्ञानों को प्रत्यक्ष नहीं कहा जा सकता। उपचार से इनको एकदेश प्रत्यक्ष क्यों कहा है यह अब अगले तीन श्लोकों में स्पष्ट करते हैं:—

उपचार का कारण ७०३ से ७०५ तक

तत्रोपचारहेतुर्यथा मतिज्ञानमक्षजं नियमात् ।
अथ तत्पूर्वं श्रुतमपि न तथावधिचित्तपर्ययं ज्ञानम् ॥७०३॥

अर्थ—उपचार का कारण भी यह है कि जिस प्रकार मतिज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नियम से इन्द्रियजन्य ज्ञान है और उस मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान भी इन्द्रिय जन्य है। उस प्रकार अवधि और मनः पर्यय ज्ञान इन्द्रियजन्य नहीं है। तथा—

यत्स्यादवग्रहेहावायानतिधारणापरायत्तम् ।
आद्यं ज्ञानं द्वयमिह यथा तथा नैव चान्तिमं द्वैतम् ॥७०४॥

अर्थ—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा के पराधीन जिस प्रकार आदि के दो ज्ञान होते हैं उस प्रकार अन्त के दो नहीं होते। तथा—

दूरस्थानर्थानिह समक्षमिव वेत्ति हेलया यस्मात् ।
केवलमेव मनःसादवधिमनःपर्ययद्वयं ज्ञानम् ॥७०५॥

अर्थ—अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान दो ज्ञान केवल मन की सहायता से दूरवर्ती पदार्थों को कौतुक के समान सकल प्रत्यक्षवत् जान लेते हैं। इन तीनों कारणों से इन दोनों ज्ञानों को उपचार से एक देश प्रत्यक्ष कहा है। वास्तव में ये परोक्ष हैं।

भावार्थ—ये दोनों ज्ञान (अवधि मनः पर्यय) युगपत्, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से दूरवर्ती पदार्थों को भी लीलामात्र में (क्षणमात्र में उपयोग लगाते ही) जान लेते हैं इसलिये इनको देश-प्रत्यक्ष कहते हैं। मन सम्बन्धी विशेष चर्चा आगे श्लोक ७११ से ७१८ में है वहां से मन का स्वरूप जानना। अब मतिश्रुत की कुछ विशेषता बतलाते हैं।

अपि किञ्चाभिनिबोधिकबोधद्वैतं तदादिमं यावत् ।
स्वात्मानुभूतिसमये प्रत्यक्षं तत्समक्षमिव नान्यत् ॥७०६॥

अर्थ—विशेष बात यह है कि मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये आदि के दो ज्ञान भी स्वात्मानुभूति के समय प्रत्यक्ष ज्ञान के समान प्रत्यक्ष हो जाते हैं। और समय में नहीं (केवल स्वात्मानुभव के समय जो ज्ञान होता है वह यद्यपि मतिश्रुतज्ञान है तोभी वह वैसा ही प्रत्यक्ष है जैसा कि आत्ममात्र सापेक्ष ज्ञान प्रत्यक्ष होता है)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—इन मति और श्रुतज्ञानों में भी इतनी विशेषता है कि जिस समय इन द्वारा स्वात्मानुभूति होती है उस समय ये दोनों ज्ञान भी अतीन्द्रियस्वात्मा को प्रत्यक्ष करते हैं इसलिये ये दोनों ज्ञान भी स्वात्मानुभूति के समय में प्रत्यक्ष रूप हैं पर परोक्ष नहीं।

किन्तु

तदिह द्वैतमिदं चित्स्पर्शादीन्द्रियविषयपरिग्रहणे ।
व्योमाद्यवगमकाले भवति परोक्षं न समक्षमिह नियमात् ।।७०७।।

अर्थ—यह ही दोनों मतिश्रुत ज्ञान स्पर्शादि इन्द्रियों के विषयों को ग्रहण करने में तथा आकाश आदि के जानते समय नियम से परोक्ष है (परन्तु स्वात्मानुभूति के समयवत्) प्रत्यक्ष नहीं हैं।

शंका

ननु चाद्ये हि परोक्षे कथमिव सूत्रे कृतः समुद्देशः ।
अपि तल्लक्षणयोगात् परोक्षमिह सम्भवत्येतत् ।।७०८।।

शंका—(यदि स्वात्मानुभूति के समय मतिज्ञान और श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष होते हैं तो फिर) तत्त्वार्थ सूत्र में "आदि के दो ज्ञान परोक्ष हैं" ऐसा निर्देश क्यों किया है ? दूसरे इन में परोक्ष का लक्षण "परसहाय सापेक्ष" घटित हो जाता है। इसलिये भी ये ज्ञान परोक्ष ही प्रतीत होते हैं।

भावार्थ—आगम प्रमाण से भी दोनों ज्ञान परोक्ष हैं तथा इन्द्रिय और मन की सहायता से उत्पन्न होने के कारण भी मतिश्रुत परोक्ष हैं फिर ग्रन्थकार स्वात्मानुभूति काल में निरपेक्ष ज्ञान के समान उन्हें प्रत्यक्ष कैसे बतलाते हैं ?

समाधान ७०९ से ७१९ तक

सत्यं वस्तुविचारः स्यादतिशयवर्जितोऽविसंवादात् ।
साधारणरूपतया भवति परोक्षं तथा प्रतिज्ञायाः ।।७०९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—ठीक है परन्तु जहाँ कोई विसंवाद नहीं होता है वहां वस्तु का विचार अतिशय रहित होता है। इसलिये ये दोनों ज्ञान साधारण रूप से इस सूत्र में कही हुई प्रतिज्ञानुसार परोक्ष हैं।

इह सम्यग्दृष्टे किल मिथ्यात्वोदयविनाशजा शक्तिः।
काचिदनिर्वचनीया स्वात्मप्रत्यक्षमेतदस्ति यया ॥७१०॥

अर्थ—परन्तु सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व कर्मोदय के नाश होने से कोई ऐसी अनिर्वचनीय शक्ति प्रगट हो जाती है कि जिस शक्ति के द्वारा नियम से स्वात्मप्रत्यक्ष होता है।

तदभिज्ञानं हि यथा शुद्धस्वात्मानुभूतिसमयेऽस्मिन्।
स्पर्शनरसनघ्राणं चक्षुः क्रोत्रं च नोपयोगि मतम् ॥७११॥

अर्थ—इसका खुलासा (कारण) इस प्रकार है कि इस शुद्ध स्वात्मानुभूति के समय में स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पांचों इन्द्रियां उपयोगात्मक नहीं मानी गई हैं अर्थात् शुद्ध स्वात्मानुभूति के समय इंद्रियजन्य ज्ञान नहीं होता किन्तु—

केवलमुपयोगि मनस्तत्र च भवतीह तन्मनो द्वेधा।
द्रव्यमनो भावमनो नोइन्द्रियनाम किल स्वार्थात् ॥७१२॥

अर्थ—केवल मन ही उस समय उपयुक्त होता है। वह मन दो प्रकार है (१) द्रव्यमन (२) भावमन। मन का ही उसके अर्थानुसार दूसरा नाम नोइन्द्रिय है।

द्रव्यमनो हृत्कमले घनांगुलासंख्यभागमात्रं यत्।
अचिदपि च भावमनसः स्वार्थग्रहणे सहायतामेति ॥७१३॥

अर्थ—द्रव्य मन हृदय कमल में होता है। वह घनांगुल के असंख्यात् मात्र भाग प्रमाण होता है। यद्यपि वह अचेतन है—जड़ है तथापि भाव मन जिस समय पदार्थों को विषय करता है उस समय द्रव्य मन उसकी सहायता करता है (सहायता का अर्थ निमित्त मात्र समझना)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावमनः परिणामो भवति तदात्मोपयोगमात्रं वा।
लब्ध्युपयोगविशिष्टं स्वावरणस्य क्षयात् क्रमाच्च स्यात् ॥७१४॥

अर्थ—भावमन आत्मा का ज्ञानात्मक परिणाम विशेष है। वह अपने प्रतिपक्षी-आवरण कर्मों के क्षय होने से लब्ध और उपयोग सहित क्रम से होता है।

स्पर्शनरसनघ्राणं चक्षुश्श्रोत्रं च पञ्चकं यावत्।
मूर्तग्राहकमेकं मूर्तामूर्तस्य वेदकं च मनः ॥७१५॥

अर्थ—स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु और श्रोत्र ये जितनी भी पांचों इन्द्रियां हैं सभी एक मूर्त पदार्थ को ग्रहण करने वाली हैं परन्तु मन मूर्त अमूर्त दोनों को जानने वाला है।

तस्मादिदमनवद्यं स्वात्मग्रहणे किलोपयोगि मनः।
किन्तु विशिष्टदशायां भवतीह मनः स्वयं ज्ञानम् ॥७१६॥

अर्थ—इसलिये यह बात निर्दोष रीति से सिद्ध हो चुकी कि स्वात्मा के ग्रहण करने में नियम से मन ही उपयोगी है किन्तु इतना विशेष है कि वह मन विशेष अवस्था में अर्थात् शुद्ध स्वात्मानुभूति के समय में स्वयं भी ज्ञानरूप हो जाता है।

भावार्थ—पहले कहा गया है कि स्वात्मानुभूति यद्यपि मतिज्ञान स्वरूप है अथवा तत्पूर्वक श्रुतज्ञान स्वरूप भी है तथापि वह निरपेक्ष ज्ञान के समान प्रत्यक्ष ज्ञान रूप है। इसी बात को यहां पर स्पष्ट कर दिया है कि यद्यपि मतिश्रुत परोक्ष होते हैं और वे इन्द्रिय और मन से होते हैं, मन अमूर्त का भी जानने वाला है। जिस समय वह केवल स्वात्मा का ही ग्रहण कर रहा है उस समय वह मन रूप ज्ञान भी अमूर्त ही है। इसलिये वह अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष है। इन्द्रियां मूर्त पदार्थ का ही ग्रहण करती हैं इसलिये स्वात्म प्रत्यक्ष में उनका उपयोग ही नहीं है। इसी को पुनः दो पद्यों द्वारा स्पष्ट करते हैं:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नासिद्धमेतदुक्तं तदिन्द्रियानिन्द्रियोद्भवं सूत्रात् ।
स्यान्मतिज्ञाने यत्तत्पूर्वं किल भवेच्छ्रुतज्ञानम् ॥७१७॥

अर्थ—यह बात असिद्ध भी नहीं है और सूत्र द्वारा भी यह बतलाया जा चुका है कि मतिज्ञान और उस मतिपूर्वक श्रुतज्ञान दोनों ही इन्द्रिय और मन से उत्पन्न होते हैं।

अयमर्थो भावमनो ज्ञानविशिष्टं स्वयं हि सदमूर्त्तम् ।
तेनात्मदर्शनमिह प्रत्यक्षमतीन्द्रियं कथं न स्यात् ॥७१८॥

अर्थ—भाव यह है कि भाव मन जब विशेष ज्ञान विशिष्ट (अमूर्त्त अपनी आत्मा को जानने वाला) होता है तब वह स्वयं अमूर्त्त स्वरूप हो जाता है। उस अमूर्त्त मन रूप ज्ञान द्वारा आत्मा का प्रत्यक्ष होता है। इसलिये यह प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय क्यों न होगा? अर्थात् केवल स्वात्मा को जानने वाला जो मानसिक ज्ञान है वह अवश्य अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष है।

अगली भूमिका—इस मतिश्रुतज्ञानात्मक भाव मन को स्वात्मानुभूति के समय में प्रत्यक्ष मानने में आया है और इसी के कारण केवल ज्ञान की उत्पत्ति हो जाती है। अवधि मनः पर्यय ज्ञान केवल ज्ञान उत्पत्ति में कारण नहीं हैं।

अपि चात्मसंसिद्धयै नियतं हेतु मतिश्रुतज्ञाने ।
प्रान्त्यद्वयं विना स्यान्मोक्षो न स्याद् ऋते मतिद्वैतम् ॥७१९॥

अर्थ—तथा आत्मा की भले प्रकार सिद्धि के लिये मतिश्रुत ये दो ही ज्ञान नियत कारण हैं। कारण इनका यह है कि अवधि और मनः पर्यय ज्ञानों के बिना तो मोक्ष हो जाता है परन्तु मतिश्रुत के बिना कदापि नहीं होता।

नोट—(१) मति श्रुत ज्ञान शुद्ध स्वात्मानुभूति के समय में निरपेक्ष ज्ञानवत् प्रत्यक्ष हैं यह बात केवल श्री समयसार जी अध्यात्म ग्रंथ में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिल सकती है, सिद्धान्त ग्रंथों में नहीं मिलेगी क्योंकि यह उनका विषय नहीं है। अतः सिद्धांत ग्रंथों में न मिलने के कारण संदिग्ध नहीं है।

(२) साथ ही अवधि मनःपर्याय ज्ञान निश्चय से परोक्ष है उपचार से एकदेश प्रत्यक्ष हैं यह भाव श्री प्रवचनसार तथा नियमसार जी में झलकता है। यह भी अध्यात्म का विषय है। सिद्धान्त शास्त्रों में तो केवल एक देश प्रत्यक्ष ही लिखा मिलेगा। पर सिद्धान्त शास्त्रों में ऐसा न मिलने के कारण यह भी शंकास्पद नहीं है। अध्यात्म के मर्मज्ञ को बराबर अनुभव में आयेगा। यह कहना भी किसी हद तक उचित है कि अध्यात्म और सिद्धान्त की लाईन ही कुछ भिन्न है पर इसका यह मतलब नहीं कि दोनों का मेल नहीं है। गुरु गम से दोनों के अभ्यसित को बराबर अनुसन्धान बैठता है। पर चाबी गुरु के हाथ है यह निस्सन्देह है।

प्रमाण के भेदों का कथन पूरा हुवा

नवां अवान्तर अधिकार

प्रमाणाभास का निरूपण (७२० से ७३७ तक)

ननु जैनानामेतन्मतं मतेष्वेवं नापरेषां हि ।
विप्रतिपत्तौ बहवः प्रमाणमिदमन्यथा वदन्ति यथा ॥७२०॥

अर्थ—जैनों के मत में ही प्रमाण की ऐसी व्यवस्था है। दूसरे मतों में ऐसा नहीं है। यह विषय विवाद ग्रस्त है क्योंकि बहुत से मत प्रमाण का स्वरूप दूसरे ही प्रकार कहते हैं जैसे:—

भावार्थ—जैनियों ने ही ज्ञान को प्रमाण माना है। अन्यमती अन्य २ वस्तुओं को प्रमाण मानते हैं जैसे—

वेदाः प्रमाणमिति किल वदन्ति वेदान्तिनो विदाभासाः ।
यस्मादपौरुषेयाः सन्ति यथा व्योम ते स्वतः सिद्धाः ॥७२१॥

अर्थ—मिथ्याज्ञानी वेदान्त मत वाले कहते हैं कि वेद ही प्रमाण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं क्योंकि वे पुरुष के बनाए हुवे नहीं हैं किन्तु वे आकाश के समान स्वतः सिद्ध हैं।

अपरे प्रमानिदानं प्रमाणमिच्छन्ति पण्डितम्मन्याः ।
समयन्ति सम्यगनुभवसाधनमिह यत्प्रमाणमिति केचित् ॥७२२॥

अर्थ—दूसरे मतवाले (नैयायिक) अपने आपको पण्डित मानते हुवे प्रमाण का स्वरूप यह कहते हैं कि जो प्रमाण का निदान (कारण) है वह प्रमाण है (प्रमा नाम प्रमाण के फल का है। उस फल का जो साधकतम कारण है वह प्रमाण है ऐसा नैयायिक कहते हैं)। दूसरे कोई ऐसा भी कहते हैं कि जो सम्यग्ज्ञान में कारण पड़ता हो वही प्रमाण है। ऐसा प्रमाण का स्वरूप मानने वालों में वैशेपिक बौद्ध आदि कई मत वाले आ जाते हैं जोकि आलोक, पदार्थ, सन्निकर्षादि को प्रमाण मानते हैं।

इत्यादिवादिवृन्दैः प्रमाणमालक्ष्यते यथारुचि तत् ।
आप्ताभिमानदग्धैरलब्धमानैरतीन्द्रियं वस्तु ॥७२३॥

अर्थ—जिन्होंने अतीन्द्रिय वस्तु (आत्मा) के स्वरूप को नहीं प्राप्त किया है और जो वृथा ही अपने आपको आप्तपने के अभिमान से जला रहे हैं ऐसे अनेक वादिगण उस प्रमाण के स्वरूप को अपनी इच्छानुसार कहते हैं।

प्रकृतमलक्षणमेतल्लक्षणदोषैरधिष्ठितं यस्मात् ।
स्यादविचारितरम्यं विचार्यमाणं खपुष्पवत्सर्वम् ॥७२४॥

अर्थ—जिन प्रमाणों का ऊपर उल्लेख किया गया है वे सब दूषित (अलक्षण) हैं (कारण कि जो प्रमाण का लक्षण होना चाहिये वह उनमें आता ही नहीं है) और जो कुछ उनका लक्षण किया गया है वह लक्षण के दोषों सहित हैं तथा अविचारित रम्य है। उन समस्त प्रमाणों के लक्षणों पर विचार किया जाय तो वे आकाश के पुष्पों के समान मालूम होते हैं अर्थात् विरुद्ध ठहरते हैं। क्यों ? सो आगे कहते हैं:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थाद्यथाकथञ्चिज्ज्ञानादन्यत्र न प्रमाणत्वम् ।
करणादि बिना ज्ञानादचेतनं कः प्रमाणयति ॥७२५॥

अर्थ—अर्थात् किसी भी प्रकार ज्ञान को छोड़कर अन्य किसी जड़ पदार्थ में प्रमाणता आ नहीं सकती है। बिना ज्ञान के अचेतन करण, सन्निकर्ष, इन्द्रिय आदि को कौन प्रमाण समझेगा ? कोई नहीं।

भावार्थ—प्रमाण का फल प्रमा-अज्ञान निवृत्ति रूप है। उसका कारण भी अज्ञान निवृत्ति रूप होना आवश्यक है इसलिए प्रमाण भी अज्ञान निवृत्ति ज्ञानस्वरूप होना चाहिए। जड़ पदार्थ प्रमेय हैं। वे प्रमाण नहीं हो सकते हैं अपने आपको जानने वाला ही पर का ज्ञाता हो सकता है। जो स्वयं अज्ञानरूप है वह स्वपर किसी को नहीं जान सकता है। इसलिये करण आदि जड़ हैं वे प्रमाण नहीं हो सकते किन्तु ज्ञान ही प्रमाण है।

तत्रान्तर्लीनत्वाज्ज्ञानसनाथं प्रमाणमिदमिति चेत् ।
ज्ञानं प्रमाणमिति यत्प्रकृतं न कथं प्रतीयेत ॥७२६॥

अर्थ—यदि यह कहा जाय कि करण आदि बाह्य कारण हैं उसमें भीतर जानने वाला ज्ञान ही है इसलिये उनमें ज्ञान अन्तर्लीन होने से ज्ञान सहित करण आदि प्रमाण हैं तो ऐसा कहने से वही बात सिद्ध हो चुकी जो प्रकृत में हम (जैन) कह रहे हैं कि ज्ञान ही प्रमाण है। यही क्यों नहीं मान लिया जाता।

शंका

ननु फलभूतं ज्ञानं तस्य तु करणं भवेत्प्रमाणमिति ।
ज्ञानस्य कृतार्थत्वात् फलवत्त्वमसिद्धमिदमितिचेत् ॥७२७॥

अर्थ—शंकाकार का कहना है कि ज्ञान फल स्वरूप है अर्थात् ज्ञान को प्रमाण का फल मानना चाहिये। उस ज्ञान के करण को प्रमाण मानना चाहिये। यदि ज्ञान को ही प्रमाण माना जाय तो ज्ञान का प्रयोजन तो हो चुका—प्रमाण का फलवानपना असिद्ध होगा ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—शंकाकार का यह अभिप्राय है कि प्रमाण और प्रमाण का फल दोनों ही जुदे जुदे होने चाहिये और प्रमाण फल सहित ही होना चाहिये। ऐसी अवस्था में ज्ञान को प्रमाण का फल और उस ज्ञान के कारण (करण-जड़ इन्द्रियां वगैरह) को प्रमाण मानना ही ठीक है। यदि ऐसा नहीं माना जाय और ज्ञान को ही प्रमाण माना जाय तो फिर प्रमाण का फल क्या ठहरेगा ? उसका अभाव ही हो जायगा ?

समाधान ७२८ से ७३७ तक

नैवं यतः प्रमाणं फलं च फलवच्च तत्स्वयं ज्ञानम् ।
दृष्टिर्यथा प्रदीपः स्वयं प्रकाश्यः प्रकाशकश्च स्यात् ॥७२८॥

अर्थ—ऐसा नहीं है क्योंकि प्रमाण, उसका फल और उसका कारण वह स्वयं ज्ञान ही है। दृष्टान्त—जैसे दीपक दूसरों का भी प्रकाश करता है और स्वयं अपना भी प्रकाश करता है अर्थात् दीपक स्वयं प्रकाश्य (जिसका प्रकाश किया जाय) भी है और वही प्रकाशक है।

भावार्थ—दीपक के दृष्टान्त के समान प्रमाण भी ज्ञान ही है। प्रमाण का कारण भी ज्ञान ही है और प्रमाण का फल भी ज्ञान ही है। ज्ञान से भिन्न न कोई प्रमाण है और न उसका फल ही है। यहां पर यह शंका अभी खड़ी ही रहती है कि दोनों को ज्ञान रूप मानने से दोनों एक ही हो जायेंगे अथवा फलशून्य प्रमाण और प्रमाणशून्य फल हो जायगा परन्तु विचार करने पर यह शंका भी निर्मूल ठहरती है। जैन सिद्धान्त में प्रमाण और प्रमाण का फल सर्वथा भिन्न नहीं है किन्तु कथंचित् भिन्न है। कथंचित् भेद में ज्ञान की पूर्व पर्याय प्रमाण रूप पड़ती है उसकी उत्तर पर्याय फल रूप पड़ती है क्योंकि प्रमाण का फल अज्ञान निवृत्ति माना है तथा हेयोपादेय और उपेक्षा भी प्रमाण का फल है। जो प्रमाण रूप ज्ञान है वही ज्ञान अज्ञान से निवृत्त होता है और उसी में हेयोपादेय तथा उपेक्षा रूप बुद्धि होती है। इसलिये ज्ञान ही प्रमाण और ज्ञान ही फल सिद्ध हो चुका। साथ ही प्रमाण और प्रमाण का फल दोनों एक हो जायेंगे अथवा फलशून्य प्रमाण हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जायगा इस शंका का परिहार भी हो चुका।

उक्तं कदाचिदिन्द्रियमथ च तदर्थेन सन्निकर्षयुतम्।
भवति कदाचिज्ज्ञानं त्रिविधं करणं प्रमायाश्च ॥७२९॥

अर्थ—कभी इन्द्रिय को, कभी अपने बिषय के सन्निकर्ष सहित इन्द्रिय को और कभी ज्ञान को, इस प्रकार तीन प्रकार प्रमा (प्रमाण का फल) का करण वैशेषिकों के यहाँ कहा है।

पूर्वं पूर्वं करणं तत्र फलं चोत्तरोत्तरं ज्ञेयम्।
न्यायात्सिद्धमिदं चित्फलं च फलवच्च तत्स्वयं ज्ञानम् ॥७३०॥

अर्थ—इन तीनों में पहला पहला कारण और आगे आगे का फल उनके कहे अनुसार जानना चाहिये। इस न्याय से तो यह स्वयं सिद्ध होगया कि वह ज्ञान ही स्वयं फल है और ज्ञान ही स्वयं फलवान (प्रमाण) है।

भावार्थ ७२९–७३० (१) कभी इन्द्रियों को प्रमाण कहा गया है। कभी इन्द्रिय और पदार्थ के सन्निकर्ष को प्रमाण कहा गया है। कभी ज्ञान को ही प्रमाण कहा गया है। इस प्रकार तीन प्रकार प्रमा का करण अर्थात् प्रमाण का परम साधक कारण कहा गया है। ये तीनों ही आत्मा की अवस्थायें हैं। पहली इन्द्रियरूप अवस्था भी आत्मावस्था है। दूसरी सन्निकर्ष विशिष्ट अवस्था भी आत्मावस्था है। तथा ज्ञानावस्था भी आत्मावस्था है अर्थात् तीनों ही ज्ञानरूप हैं। इन तीनों में पहला पहला करण पड़ता है और आगे आगे का फल पड़ता है। इसलिये यह बात न्याय से सिद्ध हो चुकी कि ज्ञान ही फल है और ज्ञान ही प्रमाण है। (२) वैशेषिकों के यहां प्रमा के करण तीन माने हैं। १. इन्द्रिय २. सन्निकर्ष सहित इन्द्रिय और ज्ञान। इनमें से इन्द्रिय का फल सन्निकर्ष सहित इन्द्रिय और सन्निकर्ष सहित इन्द्रिय का फल प्रमाण माना है। इस प्रकार जैसे वैशेषिकों के यहां मध्यवर्ती करण, पूर्ववर्ती करण की अपेक्षा से फलरूप, अपने उत्तरवर्त्ती करण की अपेक्षा से करणरूप पड़ जाने के कारण वह मध्यवर्ती करण, स्वयं करण वा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फल रूप माना जाता है वैसे ही ज्ञान भी अज्ञान निवृत्ति की अपेक्षा से फलरूप और प्रामाण्य की उत्पत्ति की अपेक्षा से प्रमाणरूप हो जाता है इसलिये प्रमाणात्मक ज्ञान ही स्वयं फल वा फलवान है ऐसा मानना युक्तियुक्त है।

तत्रापि यदा करणं ज्ञानं फलसिद्धिरस्ति नाम तदा।
अविनाभावेन चितो हानोपादानबुद्धिसिद्धत्वात् ॥७३१॥

अर्थ—उनमें भी जिस समय ज्ञान करण पड़ता है उस सम फल सिद्धि है क्योंकि अविनाभाव से चेतना (आत्मा) की हान उपादान बुद्धि की सिद्धि देखी जाती है और यही ज्ञान का फल है (अर्थात् पूर्वज्ञान करण और उत्तरज्ञान फल पड़ता है और यह बात असिद्ध भी नहीं है)।

भावार्थ—जिस समय ज्ञान करण रूप मे प्रमाण है उस समय उस ज्ञान से अविनाभाव रखने वाला हेय का त्याग, उपादेय का ग्रहण और अज्ञान की निवृत्ति-प्रमाण का फल सिद्ध हो जाता है।

नाप्येतदप्रसिद्धं साधनसाध्यद्वयोः सदृष्टान्तात्।
न बिना ज्ञानात् त्यागो भुजगादेर्वा स्रगाद्युपादानम् ॥७३२॥

अर्थ—साधन भी ज्ञान पड़ता है और साध्य भी ज्ञान पड़ता है यह बात असिद्ध नहीं है किन्तु दृष्टान्त से सुप्रसिद्ध है। यह बात प्रसिद्ध है कि ज्ञान के बिना सर्पादि अनिष्ट पदार्थों का त्याग और माला आदि इष्ट पदार्थों का ग्रहण नहीं होता है।

भावार्थ—प्रमाण का स्वरूप इस प्रकार कहा है "जो हित की प्राप्ति और अहित का परिहार करने में समर्थ है वह प्रमाण है अतः वह ज्ञान ही हो सकता है अन्य सन्निकर्षादिक नहीं"। हित नाम सुख और सुख के कारणों का है। अहित नाम दुःख और दुःख के कारणों का है। जो हित की प्राप्ति और अहित का परिहार कराने में समर्थ है वही प्रमाण होता है ऐसा प्रमाण ज्ञान ही हो सकता है क्योंकि सुख और सुख के कारणों का परिज्ञान तथा दुःख और दुःख के कारणों का परिज्ञान सिवाय ज्ञान के जड़ पदार्थों से नहीं हो सकता है। ज्ञान में ही यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामर्थ्य है कि वह सर्पादि अनिष्ट पदार्थों में त्यागरूप बुद्धि और माला आदि इष्ट पदार्थों में ग्रहण रूप बुद्धि करावे। इसलिए प्रमाण ज्ञान ही हो सकता है तथा फल भी ज्ञान रूप ही होता है यह बात प्रायः सर्वसिद्ध है कारण प्रमाण का फल अज्ञान निवृत्ति रूप होता है। ऐसा फल ज्ञान ही हो सकता है, जड़ नहीं।

उक्तं प्रमाणलक्षणमिह यदनार्हतं कुवादिभिः स्वैरम्।
तल्लक्षणदोषत्वात्तसर्वं लक्षणाभासम् ॥७३३॥

अर्थ– जो कुछ प्रमाण का लक्षण कुवादियों ने स्व-इच्छा-पूर्वक कहा है वह आर्हत (जैन) लक्षण नहीं है। उसमें लक्षणके दोष आते हैं। अतः वह (लक्षण नहीं किन्तु) लक्षणाभास हैं।

भावार्थ—अन्य वादियों के द्वारा माने गये प्रमाण के लक्षण अव्याप्ति अतिव्याप्ति और असंभव रूप लक्षण के दोषों से दूषित हैं। यही बात नीचे स्पष्ट करते हैं:—

स यथा चेत्प्रमाणं लक्ष्यं तल्लक्षणं प्रमाकरणम्।
अव्याप्तिको हि दोषः सदेश्वरे चापि तदयोगात् ॥७३४॥

अर्थ—उसका खुलासा इस प्रकार है—यदि प्रमाण लक्ष्य है और उसका प्रमाकरण लक्षण है तो अव्याप्ति दोष आता है क्योंकि प्रमाणभूत ईश्वर के सदैव रहने पर भी उसमें 'प्रमाकरणं प्रमाणं' यह प्रमाण का लक्षण नहीं घटता है।

भावार्थ—नैयायिक ईश्वर को प्रमाण तो मानते हैं। वे कहते हैं "वह ईश्वर मुझे प्रमाण है" परन्तु वे उस ईश्वर को प्रमा का करण नहीं मानते हैं किन्तु उस का उसे अधिकरण मानते हैं। उनके मत से ईश्वर प्रमाण है तो भी उसमें प्रमाकरण रूप प्रमाण का लक्षण नहीं रहता। इसलिये लक्ष्य के एक देश-ईश्वर में प्रमाण का लक्षण न जाने से अव्याप्ति दोष बना रहा।

योगिज्ञानेऽपि तथा न स्यात्तल्लक्षणं प्रमाकरणम्।
परमाण्वादिषु नियमान्न स्यात्तत्सन्निकर्षश्च ॥७३५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—इसी प्रकार जो लोग प्रमाकरण प्रमाण का लक्षण करते हैं उनके यहाँ योगियों के ज्ञान में भी उक्त लक्षण नहीं जाता है क्योंकि उन्हीं लोगों ने योगियों के ज्ञान को दिव्य ज्ञान माना है। वह सूक्ष्म और अमूर्त पदार्थों का भी प्रत्यक्ष करता है ऐसा वे स्वीकार करते हैं परन्तु परमाणु आदि पदार्थों में इन्द्रिय सन्निकर्ष नियम से नहीं हो सकता है।

भावार्थ—इन्द्रिय सन्निकर्ष अथवा इन्द्रिय व्यापार ही को वे प्रमाकरण बतलाते हैं। यह सन्निकर्ष और व्यापार स्थूल मूर्त पदार्थों के साथ ही हो सकता है। सूक्ष्म परमाणु तथा अमूर्त और दूरवर्ती पदार्थों का वह नहीं हो सकता है। इसलिये सन्निकर्ष अथवा इन्द्रिय व्यापार प्रमाकरण को प्रमाण मानने से योगीजन सूक्ष्मादि पदार्थों का प्रत्यक्ष नहीं कर सकते परन्तु वे करते हैं ऐसा वे मानते हैं। इसलिये योगिजनों में उनके मत से ही प्रमाकरण लक्षण नहीं जाता है। यदि वे योगियों को प्रमा का करण स्वयं नहीं मानते हैं तो उनके मत से ही प्रमाण का लक्षण अव्याप्ति दोष से दूषित हो गया क्योंकि उन्होंने योगियों के ज्ञान को प्रमाण माना है।

वेदाः प्रमाणमत्र तु हेतुः केवलमपौरुषेयत्वम्।
आगमगोचरताया हेतोरन्याश्रितादहेतुत्वम् ॥७३६॥

अर्थ—"वेद प्रमाण है" (ऐसा वेदान्ती मानते हैं) और उसमें केवल अपौरुषेयत्व हेतु द्वारा प्रमाणता लाते हैं किन्तु अपौरुषेयत्व रूप हेतु के आगम गोचरता होने से अन्याश्रितपना है। इसलिये वह हेतु अहेतु हो जाता है।

भावार्थ—वेदों को प्रमाण मानने वाले वेदों की प्रमाणता में अपौरुषेयत्व हेतु बतलाते हैं अर्थात् उनका यह कहना है कि पुरुष राग द्वेष से दूषित होते हैं। अतः पुरुषों के द्वारा निरूपित पदार्थ का स्वरूप प्रमाणिक नहीं कहा जा सकता है किन्तु जो पुरुषों के द्वारा प्रतिपादित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न हों वही प्रमाणिक हो सकता है। वेद अपौरुषेय है इसलिये वही प्रमाण है इस प्रकार अपौरुषेयत्व हेतु से वेद में प्रमाणता सिद्ध करते हैं परन्तु यहां पर वेद की प्रमाणिकता में जो अपौरुषेयत्व हेतु दिया है वह उनके आगम से ही सिद्ध है युक्ति से नहीं। इसलिये वह अपौरुषेयत्व हेतु आगम के आश्रित होने से अन्याश्रित (आगमाश्रित) है और अन्याश्रित होने से समीचीन हेतु नहीं कहा जा सकता है कारण कि अपने २ अनुयायी वर्ग ही आगम प्रमाण को प्रमाण मानने के लिये वाध्य होते हैं इतर नहीं क्योंकि सर्व साधारण तो युक्ति सिद्धि कथन को ही प्रमाण मानने के लिये वाध्य किये जा सकते हैं। सारांश यह है कि अपौरुषेयत्व हेतु आगमाश्रित होने से स्याद्वादियों के प्रति असिद्ध है।

एवमनेकविधं स्यादिह मिथ्यामतकदम्बकं यावत्।
अनुपादेयमसारं बृद्धैः स्याद्वादवेदिभिः यावत् ॥७३७॥

भावार्थ—इस प्रकार जितना भी अनेक विध प्रचलित मिथ्या मतों का समूह है वह सब असार है इसलिये वह शास्त्रानुसार स्याद्वाद वेदी वृद्ध (अनुभवी) पुरुषों द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं हैं।

प्रमाणाभास का निरूपण समाप्त हुआ।

दसवां अवान्तर अधिकार

निक्षेपों का वर्णन (७३८ से ७४५ तक)

प्रतिज्ञा

उक्तं प्रमाणलक्षणमनुभवगम्यं यथागमज्ञानात्।
अधुना निक्षेपपदं संक्षेपाल्लक्ष्यते यथालक्ष्म ॥७३८॥

अर्थ—आगम ज्ञान के अनुसार, अनुभव में आने योग्य प्रमाण का लक्षण कहा। अब संक्षेप से निक्षेपों का स्वरूप उसके लक्षणानुसार कहा जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शंका

ननु निक्षेपो न नयो न च प्रमाणं न चांशकं तस्य ।
पृथगुद्देश्यत्वादपि पृथगिव लक्ष्यं स्वलक्षणादिति चेत् ॥७३९॥

शंका—निक्षेप न नय है और न प्रमाण है और न उसका अंश है। नय प्रमाण से निक्षेप का उद्देश्य (निर्देश) ही जुदा है। उद्देश्य जुदा होने से उसका लक्षण ही जुदा है। इसलिये लक्ष्य भी स्वतन्त्र होना चाहिये ? अर्थात् निक्षेप प्रमाण नय से जब जुदा है तो उनके समान इसका भी स्वतन्त्र ही उल्लेख करना चाहिये ?

समाधान

सत्यं गुणसापेक्षो सविपक्षः स च नयः स्वपक्षपतिः* ।
य इह गुणाक्षेपः स्यादुपचरितः केवलं स निक्षेपः ॥७४०॥

अर्थ—जो आपने कहा ठीक है ऐसा ही है। क्योंकि जो गुणों की अपेक्षा से प्रयोग होता है, अपने पक्ष का स्वामी है और विपक्ष सहित है वह नय है (नय जैसा कहता है वस्तु में वैसा गुण पाया जाता है। नय सदा अपने विवक्षित पक्ष का स्वामी है अर्थात् वह सदा विवक्षित पक्ष पर आरूढ़ रहता है और दूसरे प्रतिपक्ष नय की अपेक्षा भी रखता है किन्तु निक्षेप में यह बातें नहीं है)। जो पदार्थ में गुणों का आक्षेप किया जाता है वह निक्षेप है। वह निक्षेप केवल उपचरित (व्यवहार चलाने के लिये) होता है।

भावार्थ—नय और निक्षेप का स्वरूप कहने से ही शंकाकार की शंका का परिहार हो जाता है। सबसे बड़ा भेद तो इनमें यह है कि नय तो वास्तविक ज्ञान विकल्प है और निक्षेप पदार्थों में व्यवहार के लिये किये गये संकेतों का नाम है। इस श्लोक में 'गुणाक्षेपः' पद आया है उसका अर्थ चारों निक्षेप में इस प्रकार घटित होता है—नाम-अतद्गुण पदार्थ में केवल व्यवहारार्थ किया हुवा आक्षेप है।

---

*'स्वपक्षपति' के स्थान पर 'स्वयंक्षिपति' पाठ भी मिलता है। हमें वह नहीं जचा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। स्थापना में– अतद्गुण पदार्थ में किया हुवा गुणों का आक्षेप है। द्रव्य में–भावि तद्गुण में वर्तमानवत् किया हुवा गुणों का आक्षेप है। भाव में–वर्तमान तदगुण में किया हुवा वर्तमान गुणों का आक्षेप है। इस प्रकार गुणों का आक्षेप ही निक्षेप है।

निक्षेपः स चतुर्धा नाम ततः स्थापना ततो द्रव्यम्।
भावस्तल्लक्षणमिह भवति यथा लक्ष्यतेऽधुना चार्थात् ॥७४१॥

अर्थ—वह निक्षेप चार प्रकार है (१) नाम (२) स्थापना (३) द्रव्य (४) भाव। अब अर्थ से इन चारों का लक्षण जिस प्रकार से है उस प्रकार से कहा जाता है।

वस्तुन्यतद्गुणे खलु संज्ञाकरणं जिनो यथा नाम।
सोऽयं तत्समरूपे तद्बुद्धिः स्थापना यथा प्रतिमा ॥७४२॥

अर्थ—(१) किसी वस्तु में उसके नाम के अनुसार गुण तो न हों। केवल व्यवहार चलाने के लिये उसका नाम रख देना नाम निक्षेप है। जैसे किसी पुरुष में कर्मों के जीतने का गुण सर्वथा नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसको बुलाने के लिये 'जिन' यह नाम रख दिया जाता है। (३) किसी समान आकारवाले पदार्थ में गुण तो वे न हों परन्तु उसमें उन गुणों की बुद्धि रखना और उसका "यह वही है" ऐसा व्यवहार करना स्थापना निक्षेप है जैसे प्रतिमा। [जैसे पार्श्वनाथ की प्रतिमा को मन्दिरजी में हम पूजते हैं। यद्यपि प्रतिमा पुरुषाकार है परन्तु है पाषाण की। उस पाषाण की प्रतिमा में उन पार्श्वनाथ भगवान के जीव की जो कि अनन्तगुणधारी अरहन्त थे स्थापना करना और व्यवहार करना कि यह प्रतिमा ही पार्श्वनाथ है–स्थापना निक्षेप है]।

ऋजुनयनिरपेक्षतया सापेक्षं भाविनैगमादिनयैः।
छद्मस्थो जिनजीवो जिन इव मान्यो यथात्र तद्द्रव्यं ॥७४३॥

अर्थ—जिसमें ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा नहीं है किन्तु जो भावि-नैगमादि नयों की अपेक्षा से होता है वह द्रव्य निक्षेप है जैसे छद्मस्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनके जीव को साक्षात् जिनके समान समझना द्रव्य निक्षेप है।

भावार्थ—ऋजुसूत्र नय का विषय वर्तमान है तथा भाविनैगम नय का विषय 'नियम से होने वाला' है। इन दोनों नयों में से ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा न करके भाविनैगम नय की अपेक्षा से नियम से होने वाले को वर्तमान में कहना द्रव्य निक्षेप है जैसे छद्मस्थ अवस्थामें वर्तमान जिनके जीव को 'जिन' कहना–द्रव्य निक्षेप है। भगवान को गर्भ, जन्म, गृहस्थ, अवस्था में भी केवली जिनवत् इसी निक्षेप से मानते हैं।

तत्पर्यायो भावो यथा जिनः समवशरणसंस्थितिकः।
घातिचतुष्टयरहितो ज्ञानचतुष्टययुतो हि दिव्यवपुः ॥७४४॥

अर्थ—वर्तमान में जिस पदार्थ की जो पर्याय हो उसको उसी रूप कहना भावनिक्षेप है। जैसे समवशरण में विराजमान, चार घातिया कर्मों से रहित, अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय से युक्त, दिव्य परमौदारिक शरीर में स्थित अरहन्त जिन को 'जिन' कहना भाव निक्षेप है। अब ग्रन्थकार उक्त कथन में आगम प्रमाण देते हैं।

णामजिणा जिणणामा ठहणजिणा जिणिंदपडिमाए।*
दव्वजिणा जिणजीवा भावजिणा समवसरणत्था ॥

अर्थ—जिननाम वाला व्यक्ति नाम जिन है, जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा यह स्थापना जिन है, जो आगे जिन होने वाला है वह द्रव्य जिन है और समवशरण में विराजमान भगवान् भावजिन है।

उपसंहार

दिङ्मात्रमत्र कथितं व्यासादपि तच्चतुष्टयं यावत्।
प्रत्येकमुदाहरणं ज्ञेयं जीवादिकेषु चार्थेषु ॥७४५॥

नोट * (१) अध्यात्म में मेरे देखने में भाविद्रव्यनिक्षेप तो आया है। भूत द्रव्य निक्षेप नहीं आया है। सर्वार्थसिद्धि में भी नहीं है। श्रीअमृतचंद्र जी ने तत्त्वार्थसार में भी नहीं दिया है। भगवान् कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने भी कहीं नहीं दिया है। (२) अतदाकार स्थापना का स्वरूप भी अध्यात्म शास्त्रों में मेरे देखने में नहीं आया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—यहां पर चारों निक्षेपों का नाम मात्र (संक्षिप्त) स्वरूप कहा गया है। इनका विस्तार से स्वरूप जैसा है वैसा तथा जीवादि पदार्थों में प्रत्येक का उदाहरण सुघटित करके आगम से जानना चाहिये।

भावार्थ—ग्रन्थकार ने निक्षेपों पर अधिक प्रकाश नहीं डाला है क्योंकि ये अध्यात्म में अधिक काम नहीं आते। आगम में अधिक काम आते हैं सो ग्रन्थकार ने लिख दिया है कि आगम से यथायोग्य जान लेना।

निक्षेप अधिकार का सार

प्रकृत में निक्षेप का स्वरूप बतलाते हुए नय से उसमें क्या भेद है यह भी बतलाया गया है। निक्षेप शब्द निउपसर्ग पूर्वक क्षिप् धातु से बनता है जिसका व्युत्पत्त्यर्थ निक्षिप्त करता होता है। आशय यह है कि लोक में जितना भी शब्द व्यवहार होता है उसका विभाग द्वारा वर्गीकरण कर देना ही निक्षेप का काम है। नय विषयी हैं किन्तु निक्षेप शब्दादिक विषय विभाग का ही प्रयोजक है। इसलिये इन दोनों में बहुत भेद है। निक्षेप केवल यह बतलाता है कि हमने जिस शब्द या वाक्य का प्रयोग किया है वह किस विभाग में सम्मिलित किया जा सकता है किन्तु नय उस शब्द प्रयोग में जो आन्तरिक मानस परिणाम कार्य कर रहा है उसका उद्घाटन करता है। वह बतलाता है कि यह शब्द प्रयोग किस दृष्टिकोण से ठीक है। निक्षेप व्यवस्था के अनुसार समस्त वचन प्रयोग नामादि चार भागों में विभक्त किया जा सकता है अतः निक्षेप के चार भेद माने गये हैं। निक्षेप ज्ञेय पर लगते हैं और नय ज्ञान के अंश हैं यह सब से बड़ा अन्तर है।

निक्षेपों का निरूपण समाप्त हुआ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्यारहवां अवान्तर अधिकार

नय प्रमाण को लगाने की पद्धति ७४६ से ७६८ तक

प्रतिज्ञा

उक्तं गुरुपदेशान्नयनिक्षेपप्रमाणमिति तावत् ।
द्रव्यगुणपर्यायाणामुपरि यथासंभवं दधाम्यधुना ॥७४६॥

अर्थ—पहले गुरु (परमगुरु अरहन्त-अपरगुरु गणधरादि आचार्यों) के उपदेशानुसार नय प्रमाण और निक्षेप का स्वरूप कहा। अब द्रव्य गुण पर्यायों के ऊपर इनको यथायोग्य अर्थात् वस्तु स्वभाव के नियमानुसार लगाता हूँ (अर्थात् द्रव्य गुण और पर्यायों में से नय और प्रमाण का विषय कौन और किस प्रकार होता है। नय प्रमाण किस किस को विषय करते हैं यह दर्शाता हूँ)। यह प्रतिज्ञा द्रव्य गुण पर्याय, एकअनेक, अस्ति नास्ति, नित्य अनित्य, तत् अतत्, सब पर लगाने की है। अब क्रमशः लगाते हैं। पहले

द्रव्य गुण पर्याय पर नयप्रमाण लगाने की पद्धति ७४७ से ७५० तक

तत्त्वमनिर्वचनीयं शुद्धद्रव्यार्थिकस्य भवति मतम् ।
गुणपर्ययवद् दव्यं पर्यायार्थिकनयस्य पक्षोऽयम् ॥७४७॥

अर्थ—तत्त्व अर्थात् द्रव्य अनिर्वचनीय (वचन का अविषय—अभेदरूप—अखण्ड—सामान्य) है यह शुद्धद्रव्यार्थिक नय का पक्ष (विषय) है तथा द्रव्य गुणपर्यायवाला है (भेद रूप है) यह पर्यायार्थिक नय की मान्यता है।

भावार्थ—तत्त्व में अभेद बुद्धि का होना द्रव्यार्थिक नय है और उस में भेद बुद्धि का होना पर्यायार्थिक नय है। अनिर्वचनीय उसी को कहते हैं जिसका "न इति" (ऐसा नहीं है) ऐसा लक्षण कहकर आये हैं अर्थात् वह अपना स्वरूप शब्द में नहीं बतला सकता। केवल व्यवहार का निषेध कर अखण्डता का संकेत कर देता है। इस दृष्टि से द्रव्य का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्षण श्लोक नं० ८ में कहा है और ७० तक उसका निरूपण किया है। और पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से द्रव्य का लक्षण ७२, ७३, ८६ में कहा है और ७१ से २६० तक उसका स्पष्टीकरण किया है।

यदिदमनिर्वचनीयं गुणपर्ययवत्तदेव नास्त्यन्यत् ।
गुणपर्ययवद्यदिदं तदेव तत्वं तथा प्रमाणमिति ॥७४८॥

अर्थ—जो द्रव्य अनिर्वचनीय (अखण्ड) है वही द्रव्य गुण पर्याय वाला है, दूसरा नहीं है, तथा जो द्रव्य गुणपर्याय वाला है वही तत्त्व (अनिर्वचनीय-अखण्ड) है। इस प्रकार सामान्य विशेष दोनों का जोड़ रूप युगपत विषय करने वाला प्रमाण है।

भावार्थ—वस्तु सामान्यविशेषात्मक है। सामान्य वस्तु (अखंड) द्रव्यार्थिक नय का विषय है। विशेष वस्तु (खंड) पर्यायार्थिक नय का विषय है। तथा सामान्यविशेषात्मक-उभयात्मक वस्तु प्रमाण का विषय हैं। प्रमाण एक ही समय में अविरुद्ध रीति से दोनों धर्मों को विषय करता है। जो ऐसा है वही ऐसा है यह इस के बोलने की रीति है। श्लोक ७४७-४८ इकट्ठे हैं। ७४७ की पहली पंक्ति में द्रव्यार्थिक नय का, दूसरी पंक्ति में पर्यायार्थिक नय का और ७४८ में प्रमाण का विषय है। प्रमाण की दृष्टि से द्रव्य का लक्षण श्लोक नं० २६१ को प्रथम पंक्ति में कहा है।

गुर—व्यवहार प्रतिपादक है, निश्चय 'नेति-निषेधक' है, प्रमाण उभयात्मक है।

यद् द्रव्यं तन्न गुणो योऽपि गुणस्तन्न द्रव्यमिति चार्थात् ।
पर्यायोऽपि यथा स्यात् ऋजुनयपक्षः स्वपक्षमात्रत्वात् ॥७४९॥

अर्थ—पदार्थ रूप से जो द्रव्य है, वह गुण नहीं है। जो गुण है, वह द्रव्य नहीं है। उसी प्रकार पर्याय भी पर्याय ही है द्रव्य गुण नहीं है। यह पर्यायार्थिक नय का पक्ष है क्योंकि यह द्रव्य गुण पर्यायों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भिन्न भिन्न मान कर केवल पर्याय-भेद-अंश रूप अपने विषय को कहने वाली है (यहां ऋजुसूत्र नय का अर्थ व्यवहार नय है। पद्य बनाने के कारण पर्यायवाची शब्द का प्रयोग कर लिया है। मोक्ष शास्त्र वाला अर्थ नहीं है)।

यदिदं द्रव्यं स गुणो योऽपि गुणो द्रव्यमेतदेकार्थात् ।
तदुभयपक्षदक्षो विवक्षितः प्रमाणपक्षोऽयम् ॥७५०॥

अर्थ—क्योंकि द्रव्य गुण का एक अर्थ (पदार्थ-अभेदवस्तु) अखण्ड है, इसलिये जो द्रव्य है, वही गुण है। जो गुण है, वही द्रव्य है, यह द्रव्यार्थिक नय का पक्ष है तथा भेद अभेद इन दोनों पक्षों को विषय करने में समर्थ विवक्षित जो पक्ष है यह प्रमाण का पक्ष है। जैसे जो द्रव्य गुणपर्यायवाला है वही द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है तथा वही द्रव्य अनिर्वचनीय (अखण्ड) है।

भावार्थ ७४९-५०—जो द्रव्य है, वह गुण नहीं है तथा जो गुण है, वह द्रव्य नहीं है परन्तु गुण-गुण ही है तथा द्रव्य-द्रव्य ही है। इसी प्रकार जो पर्याय है, वह पर्याय ही है, यह द्रव्य गुण नहीं है। यह पक्ष (विषय) अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय को भिन्न भिन्न मान कर केवल पर्याय-भेद-अंश मात्र को विषय करना यह व्यवहार नय का विषय है। तथा जो द्रव्य है, वही गुण है और जो गुण है, वही द्रव्य है कारण कि 'गुणसमुदायो द्रव्यं' इस सिद्धान्त में सम्पूर्ण गुणों को ही द्रव्य कहा है। इसलिये गुण और द्रव्य परस्पर भिन्न नहीं हैं परन्तु उक्त प्रकार से एक ही अर्थ वाला है। इसलिये गुण और द्रव्य को एक अखण्ड कहना यह द्रव्यार्थिक नय का पक्ष है-विषय है तथा इन दोनों नयों के पक्ष को जोड़ रूप युगपत विषय करना यह प्रमाण का विषय है। श्लोक ७४९-५० इकट्ठे हैं। ७४९ में पर्यायार्थिक नय का विषय, ७५० की प्रथम पंक्ति में द्रव्यार्थिक नय का विषय और दूसरी पंक्ति में प्रमाण का विषय है। ८ से २६१ तक जो वस्तु अधिकार में द्रव्य गुण पर्याय उत्पाद व्यय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्रौव्य का निरूपण किया है। उस पर यहां श्लोक ७४७-४८-४९-५० द्वारा नय प्रमाण को घटित करके दिखलाया है। इसके विशेष स्पष्टीकरण के लिये प्रथम पुस्तक के परिशिष्ट को तथा उसी पुस्तक के अन्त में दृष्टि परिज्ञान को पुनः पढ़िये।

पृथगादानमशिष्टं निक्षेपो नयविशेष इव यस्मात्।
तदुदाहरणं नियमादस्ति नयानां निरूपणावसरे ॥७५१॥

अर्थ—क्योंकि निक्षेप नय विशेष के समान है इसलिये इसको पृथक् ग्रहण करके निरूपण करना योग्य नहीं है क्योंकि नयों के निरूपण करते समय नियम से निक्षेपों का उदाहरण रहता है।

भूमिका—अब आगे चार पद्यों द्वारा व्यवहार नय के अन्तर्गत अनेक वा एक नय को, फिर द्रव्यार्थिक नय को, फिर इन दोनों को युगपत ग्रहण करने वाले प्रमाण को लगाकर दिखलाते हैं:—

एक अनेक पर नय प्रमाण लगाने की पद्धति ७५२ से ७५५ तक

अस्ति द्रव्यं गुणोऽथवा पर्यायस्तत् त्रयं मिथोऽनेकम्।
व्यवहारैकविशिष्टो नयः स वाऽनेकसंज्ञको न्यायात् ॥७५२॥

अर्थ—द्रव्य गुण अथवा पर्याय, ये तीनों अपने अपने स्वरूप से लक्षण से हैं इसलिये ये तीनों परस्पर में भी अनेक हैं-भिन्न हैं। इस प्रकार व्यवहार नयों के अन्तर्गत एक नय है वह न्यायानुसार अनेकता को प्रतिपादन करने के कारण से अनेक नाम वाली एक (व्यवहार) नय है।

एकं सदिति द्रव्यं गुणोऽथवा पर्ययोऽथवा नाम्ना।
इतरद् द्वयमन्यतरं लब्धमनुक्तं स एकनयपक्षः ॥७५३॥

अर्थ—नाम से चाहे द्रव्य कहो, अथवा गुण कहो अथवा पर्याय कहो पर सामान्यपने ये तीनों ही अभिन्न एक सत् है। इसलिये इन तीनों में से किसी एक के कहने से बाकी के दो का बिना कहे हुवे हो ग्रहण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो जाता है। इस प्रकार जो सत् को एक ही कहता है वह एक नाम वाली एक व्यवहार नय है।

नोट—संग्रह नय तो अनेक द्रव्यों को सदृशता की अपेक्षा से एक रूप ग्रहण करती है वह आगम की नय है जो अनेक द्रव्यों पर लगती है। यह एक नय आध्यात्मिक नय है। यह तो एक ही द्रव्य को अखण्ड रूप से ग्रहण करती है। इसका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है।

न द्रव्यं नापि गुणो न च पर्यायो निरंशदेशत्वात्।
व्यक्तं न विकल्पादपि शुद्धद्रव्यार्थिकस्य मतमेतत् ॥७५४॥

अर्थ—निरंश देश होने से अर्थात् वस्तु अखण्ड होने से न द्रव्य है, न गुण है, न पर्याय है और वह वस्तु किसी विकल्प से भी व्यक्त नहीं की जा सकती है (क्योंकि अनिर्वचनीय है)। यह शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की मान्यता है (४३६) ('नेति'—इतना मात्र ही निश्चय नय का लक्षण है और उसी के अनुसार यह लिखा है)।

द्रव्यगुणपर्यायाख्यैर्यदनेकं सद्विभिद्यते हेतोः।
तदभेद्यमनंशत्वादेकं सदिति प्रमाणमतमेतत् ॥७५५॥

अर्थ—युक्तिवश से जो सत् द्रव्य गुण पर्यायों के द्वारा अनेक रूप भेद किया जाता है वही सत् अंश रहित (अखण्ड) होने से अभेद्य एक है यह (एक-अनेकात्मक उभयरूप) प्रमाण पक्ष है।

भावार्थ—युक्ति पूर्वक (लक्षण अपेक्षा) जो सत् द्रव्य गुण पर्याय की अपेक्षा से अनेक है। वही सत् अंश रहित होने से अभेद्य एक ही है। इस प्रकार युगपत एक अनेक को विषय करने वाला जोड़ रूप ज्ञान प्रमाण का पक्ष है। जो अनेक है वही एक है -

भावार्थ ७५२ से ७५५ तक—उदाहरण सहित तथा विशेष्य विशेषण भेद सहित निरूपण करना व्यवहार नय का लक्षण है। अतः सत् अनेक है या सत् एक है यहां पर सत् विशेष्य-लक्ष्य है और अनेक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या एक उसके विशेषण-लक्षण हैं। अतः दो पद्य तो व्यवहार नय के उदाहरण है। फिर व्यवहार द्वारा विशेष्य विशेषण सहित निरूपण का निषेधक-अर्थात् न एक है—न अनेक है अखण्ड है—अवक्तव्य है—यह एक पद्य निश्चय नय का है। फिर जो अनेक है वही एक है यह जोड़ रूप ज्ञान प्रमाण है। एक पद्य इसका है। इस प्रकार चारों इकट्ठे हैं। वस्तु के अनेकान्तात्मक स्थिति नामा अधिकार में श्लोक ४३४ से ५०८ तक जो सत् को द्रव्य-क्षेत्र-काल—भाव से एक भी और अनेक भी सिद्ध किया है उस पर इन चार पद्यों द्वारा नय प्रमाण लगाकर दिखलाये गये हैं। इसका निरूपण दूसरी पुस्तक के पन्ने २३४—२३५ पर भी हो चुका है।

भूमिका—अब आगे चार पद्यों द्वारा व्यवहार अन्तर्गत अस्ति (सत्) तथा नास्ति (असत्) नय के विषय को दर्शाते हुवे, साथ साथ इन दोनों विकल्पों से रहित शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के विषय को दर्शाकर, नयों के विषय को प्रमाण किस प्रकार विषय करता है, यह बताते हैं:—

अस्ति नास्ति पर नय प्रमाण लगाने की पद्धति ७५६ से ७५९ तक

अपि चास्ति सामान्यमात्रादथवा विशेषमात्रत्वात् ।
अविवक्षितो विपक्षो यावदनन्यः स तावदस्तिनयः ॥७५६॥

अर्थ—वस्तु सामान्य मात्र से है अथवा विशेष मात्र से है। उस में जब तक विपक्ष अर्थात् नास्ति पक्ष अविवक्षित (गौण) रहता है तब तक वह एक 'अस्ति नय' है (अनन्यः शब्द का अर्थ एक है)।

भावार्थ—सामान्य विशेषात्मक वस्तु में जिस समय विशेष को गौण करके केवल सामान्य की विवक्षा होती है अथवा सामान्य गौण करके केवल विशेष की विवक्षा होती है, उस समय विपक्ष की विवक्षा न करते केवल सामान्य या केवल विशेष की अपेक्षा से वस्तु के अस्तित्व का जो निरूपण करने में आता है, वह व्यवहार अन्तर्गत नयों में से 'अस्तिनय' का विषय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नास्ति च तदिह विशेषैः सामान्यस्य विवक्षितायां वा ।
सामान्यैरितरस्य च गौणत्वे सति भवति नास्तिनयः ॥७५७॥

अर्थ—वस्तु सामान्य की विवक्षा में विशेष धर्म की गौणता होते विशेष रूप से नहीं है । अथवा विशेष की विवक्षा में सामान्य धर्म की गौणता होते सामान्य रूप से नहीं है । यह 'नास्ति नय' है ।

भावार्थ—वस्तु सामान्यविशेषात्मक है । इसलिये जिस समय सामान्य की विवक्षा होती है, उस समय विशेष धर्म की गौणता होने से वह वस्तु विशेष की अपेक्षा से 'नहीं है' तथा जिस समय विशेष की विवक्षा होती है, उस समय सामान्य धर्म की गौणता होने से वह वस्तु सामान्य की अपेक्षा से 'नहीं है' । इस प्रकार जो कथन करने में आता है, उसको व्यवहार अन्तर्गत नयों में से 'नास्ति नय' का विषय कहते हैं ।

द्रव्यार्थिकनयपक्षादस्ति न तत्त्वं स्वरूपतोऽपि ततः ।
न च नास्ति पररूपात् सर्वविकल्पातिगं यतो वस्तु ॥७५८॥

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से वस्तु स्व रूप से अस्ति रूप है-यह नहीं है तथा वस्तु पर रूप से नहीं है—यह भी नहीं है क्योंकि शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से सब विकल्पों से रहित ही वस्तु का स्वरूप है । अखण्ड अनिर्वचनीय है ।

भावार्थ—शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से तत्त्व न स्वरूप से अस्ति रूप है तथा न पर रूप से नास्ति रूप ही है कारण कि इस नय की अपेक्षा से वस्तु निर्विकल्पक (अनिर्वचनीय) अखण्ड मानी है ।

यदिदं नास्ति स्वरूपाभावादस्ति स्वरूपसद्भावात् ।
तद्वाच्यात्ययरचितं वाच्यं सर्वं प्रमाणपक्षस्य ॥७५९॥

अर्थ—जो वस्तु स्वरूपाभाव से (पर स्वरूप के अभाव की अपेक्षा से) नास्ति रूप है, और जो स्वरूप सद्भाव से अस्ति रूप है, वही वस्तु विकल्पातीत (अनिर्वचनीय अखण्ड) है । यह सब प्रमाण पक्ष है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—वस्तु पर्यायार्थिक नय से अस्तिरूप अथवा नास्ति रूप, द्रव्यार्थिक नय से विकल्पातीत तथा प्रमाण से अस्ति-नास्ति अवक्तव्य-सब रूप अविरुद्ध रीति से है।

भावार्थ ७५६ से ७५९ तक—सत् विशेष्य है। स्व रूप से अस्ति, पर रूप से नास्ति उसके विशेषण है। अतः ये दो व्यवहार नय हैं। 'नेति" सब विकल्पों से रहित–अनिर्वचनीय द्रव्यार्थिक नय है। जो व्यवहार से अस्ति तथा नास्ति रूप है और जो निश्चय से अवक्तव्य है, वही प्रमाण से अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य सब रूप है। इस प्रकार चारों इकट्ठे हैं। वस्तु की अनेकान्तात्मक स्थिति नामा अधिकार में श्लोक २६२ से ३०८ तक जो सत् को स्व (सामान्य) के द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से अस्ति (सत्) और पर (विशेष) के द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से नास्ति (असत्) तथा विशेष के द्रव्य क्षेत्र काल भाव से अस्ति और सामान्य के द्रव्य क्षेत्र काल भाव से नास्ति सिद्ध किया था, उस पर इन ४ पद्यों द्वारा नय प्रमाण घटित करके दिखलाये हैं। अस्ति नय को सत् नय और नास्ति नय को असत् नय भी श्री समयसार आदि आगमों में कहा है। दोनों नाम पर्यायवाची हैं इसका निरूपण दूसरी पुस्तक के पन्ने १६६-६७-६८ पर भी हो चुका है।

भूमिका—अब चार पद्यों द्वारा व्यवहार अन्तर्गत अनित्य, नित्य नय निषेधात्मक निश्चय नय तथा उभयात्मक प्रमाण को लगाकर दिखाते हैं।

अनित्य नित्य पर नय प्रमाण लगाने की पद्धति ७६० से ७६३ तक

उत्पद्यते विनश्यति सदिति यथास्वं प्रतिक्षणं यावत्।
व्यवहारविशिष्टोऽयं नियतमनित्यो नयः प्रसिद्धः स्यात् ॥७६०॥

अर्थ—सत् पदार्थ प्रतिक्षण अपने आप उत्पन्न होता है और नाश होता है। यह नियम से प्रसिद्ध अनित्य नय है जो व्यवहार नय का एक भेद है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—अनित्य पर्यायार्थिक नय से ऐसा कहा जाता है कि सत् प्रति समय उत्पन्न होता और नाश होता है–अनित्य है।

नोत्पद्यते न नश्यति ध्रुवमिति सत्स्यादनन्यथावृत्तेः।
व्यवहारान्तर्भूतो नयः स नित्योऽप्यनन्यशरणः स्यात् ॥७६१॥

अर्थ—अन्यथा भाव त होने से अर्थात् त्रिकाली स्वरूप की अपेक्षा सदा एक रूप रहने से सत् न तो उत्पन्न होता है और न नष्ट ही होता है। वह ध्रुव (नित्य) है। यह अनन्यशरण (स्वपक्ष नियत) एक नित्य नय है जो व्यवहार नय के अन्तर्गत हैं।

भावार्थ—नित्य पर्यायार्थिक नय से ऐसा कहा जाता है कि सत् ध्रुव एक रूप ही रहता है। वह उत्पाद व्यय नहीं करता।

न विनश्यति वस्तु यथा तथा नैव उत्पद्यते नियमात्।
स्थितिमेति न केवलमिह भवति स निश्चयनयस्य पक्षश्च ॥७६२॥

अर्थ—जिस प्रकार वस्तु नष्ट नहीं होती है, उसी प्रकार वह नियम से उत्पन्न भी नहीं होती है, तथा ध्रुव भी नहीं है, यह (निषेधात्मक कथन-अनिर्वचनीय कथन) शुद्ध निश्चय नय का पक्ष है।

भावार्थ—उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों ही एक समय में होने वाली सत् की पर्याय हैं। इसलिये इन पर्यायों को पर्यायार्थिक नय विषय करता है, परन्तु निश्चय नय सर्व विकल्पों से रहित अखण्ड वस्तु को विषय करता है।

यदिदं नास्ति विशेषैः सामान्यस्य विवक्षया तदिदम्।
उन्मज्जत्सामान्यैरस्ति तदेतत्प्रमाणमविशेषात् ॥७६३॥

अर्थ—यह जो (वस्तु) सामान्य (नित्य) की विवक्षा में विशेष रूप से (अनित्यपने से) नहीं है वही विशेष (अनित्य) की विवक्षा होने पर सामान्य (नित्य) रूप से नहीं है। यह जो नित्य है वही अनित्य है इस प्रकार दोनों को सामान्य रूप से विषय करना–किसी को मुख्य गौण किये बिना यह–प्रमाण का पक्ष है। (नित्य का पर्यायवाची सामान्य शब्द है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनित्य का पर्यायवाची विशेष शब्द है क्योंकि विशेष की उत्पत्ति उत्पाद व्यय से होती हैं) ।

भावार्थ ७६० से ७६३ तक—विशेष नाम पर्याय का है। पर्यायें अनित्य होती हैं। इसलिये विशेष की अपेक्षा से वस्तु अनित्य है। सामान्य की अपेक्षा वह नित्य भी है। ये दोनों व्यवहार पक्ष हैं। न नित्य-न अनित्य=अनिर्वचनीय–यह शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का पक्ष है। शुद्ध अर्थात् अखण्ड। एक ही समय में मैत्री रूप से नित्यानित्यात्मक है यह प्रमाण का पक्ष है। चारों श्लोक इकट्ठे हैं। वस्तु की अनेकान्तात्मक स्थिति नामा अधिकार में श्लोक ३३६ से ४३३ तक जो सत् नित्य अनित्य का निरूपण किया है उस पर इन चार पद्यों द्वारा नय प्रमाण लगाकर दिखलाये हैं। इसका निरूपण दूसरी पुस्तक के पन्ने १९६-९७-९८ पर भी हो चुका है।

भूमिका—पूर्ववत् अब चार पद्यों द्वारा व्यवहार नय के भेद रूप तत् अतत् नय, निषेधात्मक निश्चय नय तथा उभयात्मक प्रमाण को लगाकर दिखाते हैं:—

तत् अतत् पर नय प्रमाण को लगाने की पद्धति
(७६४ से ७६७ तक)

अभिनवभावपरिणतेर्योऽयं वस्तुन्यपूर्वसमयो यः ।
इति यो वदति स कश्चित्पर्यायार्थिकनयेष्वभावनयः ॥७६४॥

अर्थ—वस्तु में नवीन भाव रूप परिणमन होने से "यह तो वस्तु ही अपूर्व है" ऐसा जो कोई कहता है वह पर्यायार्थिक नयों में अभाव नय-अतत् नय है (अभाव और अतत् पर्यायवाची शब्द हैं) ।

भावार्थ—अतत् दृष्टि से वस्तु ही प्रतिसमय नई नई उत्पन्न होती है। यह अभाव नय या अतत् नय नाम की पर्यायार्थिक नय है।

परिणममानेऽपि तथा भूतैर्भावैर्निश्यमानेऽपि ।
नायमपूर्वो भावः पर्यायार्थिकविशिष्टभावनयः ॥७६५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—वस्तु के नवीन भावों से परिणमन करने पर भी तथा पूर्व भावों से विनष्ट होने पर भी–"यह अपूर्व २ (नई २) वस्तु नहीं है– किन्तु वही की वही है" ऐसा जो कोई कथन करता है, वह पर्यायार्थिक नयों में भाव नय-तत् नय है। (भाव-तत् पर्यायवाची शब्द हैं)।

भावार्थ—तत् दृष्टि से कोई वस्तु नई उत्पन्न नहीं होती है। वही का वही है। यह भाव नय या तत् नय नाम की पर्यायार्थिक नय है।

शुद्धद्रव्यादेशादभिनवभावो न सर्वतो वस्तुनि।
नाप्यनभिनवश्च यतः स्यादभूतपूर्वो न भूतपूर्वो वा ॥७६६॥

अर्थ—शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से वस्तु में सर्वथा नवीन भाव भी नहीं होता है तथा प्राचीन भाव का अभाव भी नहीं होता है क्योंकि इस नय की दृष्टि में वस्तु न तो अभूतपूर्व (नई) है और न भूतपूर्व (पुरानी) है (अखण्ड है)।

अभिनवभावैर्यदिदं परिणममानं प्रतिक्षणं यावत्।
असदुत्पन्नं न हि तत्सन्नष्टं वा न प्रमाणमतमेतत् ॥७६७॥

अर्थ—जो सत् प्रतिक्षण नवीन २ भावों से परिणमन करता है, वही न तो असत् उत्पन्न होता है और न सत् विनष्ट ही होता है यह प्रमाण का मत है।

भावार्थ—जो वस्तु परिणमन की अपेक्षा प्रति समय नई नई दीखती है, वही वस्तु तो वस्तु की अपेक्षा वही की वही है। इस प्रकार अतत् तत् (अभाव-भाव) दोनों धर्मों को मैत्री रूप से एक समय विषय करने वाला जोड़ रूप प्रमाण पक्ष है।

भावार्थ ७६४ से ७६७ तक—परिणमन पर दृष्टि रखने वाले पर्यायार्थिक नय का कहना है कि प्रति समय वस्तु ही नई नई उत्पन्न होती है यह अतत् नाम की व्यवहार नय है। वस्तु पर दृष्टि रखने वाली पर्यायार्थिक नय कहता है कि वस्तु वही की वही है, यह तत् नाम की व्यवहार नय है। शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहता है–न नई है- न पुरानी है। अखण्ड है। प्रमाण कहता है कि जो नई नई है. वही-वही की वही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्या अनेकान्त का कमाल है। अपनी अपनी जगह सभी सच्चे हैं। ये चार पद इकठ्ठे हैं। वस्तु की अनेकान्तात्मक स्थिति नामा अधिकार में श्लोक ३०९ से ३३५ तक जो सत् को तत् अतत् सिद्ध किया था उस पर यह नय प्रमाण लगाकर दिखलाये हैं। इसका निरूपण दूसरी पुस्तक पन्ने १८०-८१ पर भी हो चुका है। (७५२ से ७६७ तक के १६ सूत्रों के स्पष्टीकरण के लिये दूसरी पुस्तक के अन्त में दृष्टि परिज्ञान को पुनः पढ़िये)।

उपसंहार

इत्यादि यथासंभवमुक्तमिवानुक्तमपि च नयचक्रम्।
योज्यं यथागमादिह प्रत्येकमनेकभावयुतम् ॥७६८॥

अर्थ—इत्यादि रूप से यथा संभव जितना भी नयचक्र यहां पर कहा गया है और उसी के समान जितना भी नयचक्र यहां पर नहीं कहा गया है उसे भी आगम के अनुसार अनेक भाव युक्त प्रत्येक द्रव्य पर अलग अलग रूप से घटित कर लेना चाहिये।

भावार्थ—इस सूत्र का पेट तो सूत्रकार का बहुत बड़ा है फिर भी उस पर कुछ प्रकाश डालना हमारा कर्तव्य है। इसमें वह यह कहना चाहते हैं कि प्रत्येक सत् (जीवादि छहों द्रव्य) अनेक भावात्मक एक वस्तु है। उस पर सर्वज्ञाज्ञानुसार नय प्रमाणों का प्रयोग करना चाहिये। वह किस प्रकार सो कुछ करके आपको दिखलाते हैं। (१) पहले एक अशुद्ध संसारी जीव को लीजिये। उसका आपको ज्ञान करना है तो सबसे पहले शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से यह जानने की आवश्यकता है कि वह सत् लक्षण वाला है, अनादि अनन्त है, स्वसहाय है, स्वतः सिद्ध है, किसी ईश्वरादि से उत्पन्न नहीं है और द्रव्य गुण पर्याय, उत्पाद व्यय ध्रौव्य या द्रव्य क्षेत्र काल भाव से किसी प्रकार भी इसका खण्ड २ नहीं हो सकता है। इससे जैसी वस्तु अखण्ड है वैसी आपकी पकड़ में आ जायेगा। (२) फिर उसके अंग प्रत्यंग को जानने के लिये उसमें काल्पनिक भेद (किन्तु विधि पूर्वक) करने होंगे। सबसे पहले उसकी लम्बाई जानने के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिये यह जानने की आवश्यकता है कि वह असंख्यात प्रदेशी है। फिर यह भी दो नय से। शुद्धद्रव्यार्थिक नय से अखण्ड देश है, पर्यायार्थिक नय से एक २ प्रदेश अपने भिन्न २ लक्षण से भिन्न २ है तथा प्रमाण से जो असंख्यात प्रदेश रूप है वह अखण्ड देश है। फिर (३) उस जीव की लम्बाई जानने के लिये यह जानने की आवश्यकता पड़ती है कि वह अनन्त गुणों का बना हुआ एक अखण्ड पिण्ड है। द्रव्य दृष्टि से वह अखण्ड एक है। गुण भेद नहीं है। पर्याय दृष्टि से प्रत्येक गुण भिन्न २ है। तथा प्रत्येक गुण को जानने की उसी नाम की एक एक नय है। जो प्रत्येक गुण का भिन्न २ ज्ञान करा देती है। (५८८ से ५९६ तक)।

फिर प्रत्येक गुण का लक्षण कार्य इत्यादि जानने के बाद यह जानने की आवश्यकता है कि उसके प्रत्येक गुण के अनन्त अविभाग प्रतिछेद हैं। द्रव्य दृष्टि से वह अखण्ड गुण है और पर्याय दृष्टि से उसमें अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं। इससे आपको जीव द्रव्य के सर्वस्वसार का परिज्ञान हो जायेगा (४) फिर उन गुणों का परिणमन जानने की आवश्यकता है। प्रत्येक गुण परिणमनशील हैं। प्रत्येक समय हानि वृद्धि किया करता है। चार द्रव्यों में तो वह हानिवृद्धि स्वभाव रूप ही होती है किन्तु जीव में सिद्ध होने तक विभाव रूप से भी होती है तथा पुद्गल में स्कन्ध दशा होने पर विभाव रूप होती है और शुद्ध परमाणु दशा होने पर स्वभाव रूप होने लगती है। उस में फिर यह समझने की आवश्वकता है कि अन्वय दृष्टि से तो गुण त्रिकाल एक रूप रहता है और पर्याय दृष्टि से अपनी योग्यता के कारण हीनाधिक भी होता है। इन दोनों दृष्टियों को बराबर समझ लेने की आवश्यकता है। फिर कुछ गुणों में विभाव परिणमन भी होता है। वह उसी गुण का परिणमन है। उस द्रव्य के चतुष्टय में है। उसी की स्वकाल योग्यता से हुआ है। वह उस द्रव्य में है इसलिये तो नय अवश्य लागू होगी किन्तु वह उसमें क्षणिक है—निकल सकता है इसलिये उसका अस्तित्व उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में असद्भूत व्यवहार नय से है। इससे उस की वर्तमान स्थिति भी ख्याल में आयेगी तथा वह त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से असद्भूत होने के कारण निकाला जा सकता है यह भी ख्याल में आ जायेगा।

फिर वह विभाव बुद्धिपूर्वक अबुद्धिपूर्वक दो प्रकार का है एक उपचरित असद्भूत का विषय है दूसरा अनुपचरित का विषय है यह जानना होगा। इससे पुरुषार्थ के द्वारा बुद्धिपूर्वक को नाश करने से अबुद्धि पूर्वक स्वयं नष्ट हो जाता है। उनमें अविनाभाव है। साध्यसाधन भाव है। यह जानने की जरूरत है। फिर उसमें केवल स्वभाव रह जायेगा। वह स्वभाव बिना पर के उपचार नहीं हो सकता इसलिये इसको पर से उपचार करना पड़ता है जैसे ज्ञान स्वपर का ज्ञायक है यह उपचरित नाम की सद्भूत नय है क्योंकि ज्ञान उसमें है इसलिये सद्भूत और पर से उपचार किया जाता है इसलिये उपचरित। फिर वह उपचार भी छोड़ना पड़ता है और यह ख्याल आता है कि अरे वह तो द्रव्य की स्वतः सिद्ध अनुजीविनी शक्ति है। अपने कारण से जीती है। ऐसा जानने से पर से उपचरित बुद्धि आपमें से निकल जायेगी और वह स्वतः सिद्ध अनुपचरित वस्तु है यह बराबर ख्याल आयेगा। इस प्रकार प्रत्येक गुण की स्थिति आपके लक्ष में आ जायेगी। फिर उस द्रव्य के सब अनन्त गुणों का ज्ञान होने पर यह जानने की जरूरत पड़ेगी कि यह गुण भेद तो व्यवहार नय से है। वास्तव में वह अखण्ड वस्तु है। उसमें गुण भेद कहां। ये तो भेद दृष्टि से लक्ष में आ रहे थे। इस प्रकार आप अखण्ड सामान्य सत् वस्तु जैसी है वैसी आपके ज्ञान में आने लगेगी। इस प्रकार इस नय प्रमाण ज्ञान की सहायता से जीव अपने घर में पहुंच जाता है। बस इसी सामान्य जीव वस्तु का जहां उपयोग ने आश्रय लिया कि स्वभाव पर्याय रूप सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ। उसके होते ही यह सब ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जायेगा और उस सामान्यस्वभाव की स्थिरता रूप चारित्र द्वारा थोड़े ही समय में जीव अपने स्वभाव को पाकर सिद्ध हो जायेगा। इस प्रकार सूत्रकार का आशय नयों को यथायोग्य प्रयोग करके जानने का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। विना इस नयप्रमाण ज्ञान के जीव अपने को तथा पर को नहीं जान सकता और भेद विज्ञान की सिद्धि नहीं कर सकता। जीव पर प्रमाण को स्वयं लगा लेना तथा अन्य अनन्त नय भी इसी प्रकार लगा लेना। नित्य अनित्य, तत् अतत् नय, एक-अनेक नय आदि स्वयं लगा लेना।

अब धर्म द्रव्य पर लगाते हैं (१) पहले शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से यह जानने की जरूरत है कि वह स्वतः सिद्ध एक अखण्ड सत् है। (२) फिर द्रव्यार्थिक नय से अखण्ड देश है और पर्यायार्थिक नय से असंख्यात प्रदेशी है (३) फिर अनन्त गुणों को विषय करने वाली अनन्त नय उसी नाम से (४) फिर विभाव परिणमन न होने के कारण असद् भूत का प्रयोग इसमें नहीं होगा (५) फिर वह जीव पुद्गल को गमन सहायी है यह उसका गुण पर से उपचरित किया गया है इसलिये उपचरितसद्भूत किन्तु (६) गतिहेतुत्व स्वतःसिद्ध गुण है यह अनुपचरित-सद्भूत (७) फिर गुण और गुणी भेद के कारण व्यवहार (८) फिर वह त्रिकाली स्वभाव को कायम रखता है यह नित्यनय। पर्याय में षट्-गुणी स्वाभाविक हानिवृद्धि करता है यह अनित्य नय (९) सामान्य विशेष रूप है यह अस्ति नास्ति नय (१०) द्रव्य से वही वही है तथा पर्याय से नया नया यह तत् अतत् नय (११) अखण्ड निरंश देश होने से एक, गुण भेद होने से अनेक इत्यादिक प्रकार से उसका स्वरूप जानने की आवश्यकता है। इसी प्रकार अधर्म, आकाश, काल पर स्वयं लगा लेना।

अब पुद्गल पर लगाकर दिखलाते हैं (१) वह अखण्ड द्रव्य यह शुद्धद्रव्यार्थिक (२) एक अखण्ड देश यह निश्चय तथा ६ कोन यह व्यवहार (३) अनन्त गुण ऐक एक गुण को विषय करने वाला एक २ नय (४) विभाव परिणमन को बतलाने वाला असद्भूत व्यवहार (५) पर्याय पर से उपचरित के कारण उपचरितसद्भूत (६) गुण स्वतः सिद्ध सद्भूत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७) गुण गुणी का भेद व्यवहार (८) स्वभाव के कारण नित्य-पर्याय के कारण अनित्य (९) अखण्ड निरंश देश के कारण एक, गुणपर्याय भेद के कारण अनेक इत्यादि प्रकार से जान लेना।

अब सार बात यह है कि वस्तु अनन्तधर्मात्मक हैं और उस पर लगने वाली अनन्तनय हैं। कहां तक कहें। आगम तो भाव पकड़ा देता है। नय तो वक्ता का अभिप्राय है। आप कहीं तक नय बनाते जायें। यदि भाव आपके अन्दर पदार्थ का ठीक झलक रहा है तो तीर निशाने पर बैठेगा। वरना सत् असत् की अविशेषता बिना पागल के समान बकवास होगी। बस सूत्रकार का यही आशय है कि अनेक भाव युक्त जो प्रत्येक सत् है उस पर आप हमारी कही हुई या बिना कही हुई सब नय आगम के नियमानुसार लगा लेना। अध्यापकों के संकेतार्थ हमने संक्षिप्त में लिखा है। वे विद्यार्थियों को अच्छी तरह निपुण करा दें। नय प्रमाण का ज्ञान परम आवश्यक है। अध्यात्म के चक्रवर्ती श्री अमृतचन्द्र सूरि ने लिखा है कि जैन धर्म की यह तीक्ष्ण नय खड्ग शत्रुओं के मस्तक को काटती हुई पदार्थ की यथार्थ सिद्धि करती है और नय चक्र को चलाने में निपुण गुरुओं की कृपा से ही यह खड्ग चलाई जा सकती है। उसके लिए श्री सद्गुरुदेव की शरण लें। यह बात और जान लेनी चाहिए कि मोक्षशास्त्र में बताई हुई नयों से ग्रन्थकार का बिल्कुल आशय नहीं है क्योंकि वे आगम दृष्टि की नय हैं। छः द्रव्यों के समुच्चय विवेचन पर लगती हैं। दूसरे ये भी जान लेना चाहिये कि यहां सब नय एक ही सत् के चतुष्टय पर लगेंगी। दो द्रव्यों पर लगने वाली नय नहीं हैं किन्तु नयाभास हैं। उपर्युक्त सूत्र में नयाभासों का ग्रहण नहीं है।

श्लोक ७४६ से ७६८ तक का सार

प्रकृत में द्रव्य गुण पर्याय का अवलम्बन लेकर पर्यायार्थिक, द्रव्यार्थिक नय और प्रमाण पक्ष को समझाने की योजना की गई है। इसी प्रकार एक-अनेक, अस्ति-नास्ति, नित्य-अनित्य और भाव अभाव (तत्-अतत्) इनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपेक्षा पर्यायार्थिक नय पक्ष, द्रव्यार्थिक नय पक्ष और प्रमाण पक्ष को बतलाया गया है। इस सब कथन का तात्पर्य यह है कि किसी एक धर्म द्वारा वस्तु का विवेचन करना पर्यायार्थिक नय है। 'न तथा' इस द्वारा उसका निषेध करना द्रव्यार्थिक नय है और इन सब धर्मों का समुच्चय रूप से ग्रहण करना प्रमाण है। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में पर्यायार्थिक नय को व्यवहार नय और द्रव्यार्थिक नय को निश्चय नय कहा गया है। निश्चय दृष्टि अशेष विशेषों से हटाकर चित्त को एक सामान्य तत्त्व की ओर ले जाती है जो द्रव्यार्थिक नय का वाच्य है। यह दृष्टि प्रधान है और स्वरूप सिद्धि के लिये परमावश्यक है। पर्याय दृष्टि अभूतार्थ दृष्टि है निश्चय दृष्टि भूतार्थ दृष्टि है। ज्ञान का विषय तो सब प्रमाण नय हैं किन्तु सम्यक्त्व का विषय एक निर्विकल्प शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। मोक्ष-मार्ग इसी के आधीन है। यह इस कथन का तात्पर्य है।

नय प्रमाण प्रयोग पद्धति समाप्त

परिशिष्ट

दृष्टि परिज्ञान (३)

पहली पुस्तक में तीन दृष्टियोंसे काम लिया गया था। अखण्ड को बतलाने वाली द्रव्यदृष्टि, उसके एक२ गुण पर्याय आदि अंशों का बतलाने वाली पर्याय दृष्टि, खण्ड अखण्ड उभयरूप बतलाने वाली प्रमाण दृष्टि। दूसरी पुस्तक में चार दृष्टि से काम लिया गया था। वस्तु युगलों से गुंफित है। उन युगलों के एक २ धर्म को बतलाने वाली एक २ पर्याय दृष्टि, दोनों को इकट्ठा बतलाने वाली प्रमाण दृष्टि तथा अभेद-अखण्ड बतलाने वाली अनुभय दृष्टि या शुद्ध दृष्टि। अब इस तीसरी पुस्तक में अन्य प्रकार की दृष्टियों से काम लिया गया है। पहली व्यवहार दृष्टि, दूसरी निश्चय दृष्टि, तीसरी प्रमाण दृष्टि, चौथी नयातीत आत्मानुभूति दशा। इनकी शुद्धि के लिये नयाभासों का भी परिज्ञान कराया गया है। अब इन पर संक्षेप से कुछ प्रकाश डालते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) सबसे पहले यह समझने की आवश्यकता है कि जैन धर्म एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य से कोई सम्बन्ध नहीं मानता। उनमें किसी प्रकार का सम्बन्ध बतलाना नयाभास है चाहे वह कर्ता सम्बन्धी हो या भोगता सम्बन्धी हो या और कोई प्रकार का भी हो। इतनी बात भली भांति निर्णीत होनी चाहिये तब आगे गाड़ी चलेगी। (२) फिर वह जानने की आवश्यकता है कि विभाव सहित एक अखण्ड धर्मी का परिज्ञान करना है। बिना भेद के जानने का और कोई साधन नहीं है अतः उस द्रव्य के चतुष्टय में दो अंश हैं एक विभाव अंश, शेष स्वभाव अंश। विभाव अंश उसमें क्षणिक है, मैल है, आगन्तुक भाव है, बाहर निकल जाने वाली चीज है। उसका नाम असद्भूत है अर्थात् जो द्रव्य का मूल पदार्थ नहीं है। उसको दर्शाने वाली दृष्टि असद्भूत व्यवहार नय है। ये नय विभाव को उस द्रव्य का बतलाती है और असद्भूत बतलाती है। ये नय केवल जीव पुद्गल में ही लगती है क्योंकि विभाव इन्हीं दो में होता है। वह विभाव एक बुद्धिपूर्वक-व्यक्त-अपने ज्ञान की पकड़ में आने वाला। दूसरा अव्यक्त—अपने ज्ञान की पकड़ में न आने वाला। पकड़ में आने वाले को उपचरित असद्भूत कहते हैं। उपचरित का अर्थ ही पकड़ में आने वाला और असद्भूत का अर्थ विभाव। और पकड़ में नहीं आने वाला अनुपचरित असद्भूत। इस नय के परिज्ञान से जीव को मूल मेटर का और मैल का भिन्न-भिन्न परिज्ञान हो जाता है और वह स्वभाव का आश्रय करके मैल को निकाल सकता है।

फिर जो बचा उसको सद्भूत कहते हैं। उसमें पर्याय को उपरचित सद्भूत और गुण को अनुपचरित सद्भूत क्योंकि पर्याय सदा पर से उपचरित की जाती है। और गुण पर से उपचरित नहीं होता अतः अनुपचरित। ये नय छहों द्रव्यों पर लगती है जैसे—ज्ञान स्व पर को जानता है यह तो जीव में सद्भूत उपचरित. पुद्गल में हरा पीला आदि उपचरित, धर्म द्रव्य में जो जीव पुद्गल को चलने में मदद दे यह स्पष्ट पर से उपचरित किया गया है, अधर्म में जो जीव पुद्गल को ठहरने में मदद करे, आकाश में जो सब को जगह दे और काल में जो सब को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिणमावे। ये सब उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का कथन है। अब पर्याय दृष्टि को गौण करके द्रव्य और गुण का भेद करके कहना अनुपचरित जैसे आत्मा का ज्ञान गुण, पुद्गल का स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुण, धर्म का गतिहेतुत्व गुण, अधर्म का स्थितिहेतुत्व गुण, आकाश का अवगाहत्व गुण, काल का परिणमनहेतुत्व गुण। इन गुणों को द्रव्य के उपजीवी गुण बतलाना। स्वतः सिद्ध अपने कारण से रहने वाले, ये अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है। अनुपचरित अर्थात् पर से बिल्कुल उपचार नहीं किये गये किन्तु स्व से ही उपचार किये गये।

अब एक दृष्टि और समझने की है वह यह कि दूसरा धर्मी तो दूसरा ही है। उसकी तो बात ही क्या। विभाव क्षणिक है। निकल जाता है। वह कोई मूल वस्तु ही नहीं। अतः उसकी भी क्या बात। अब द्रव्य में केवल पूर्ण स्वभाव पर्याय और गुण बचता है क्योंकि एक देश स्वभाव पर्याय भी साथ में विभाव के अस्तित्व के कारण थी। जब विभाव निकल गया तो एक देश स्वभाव पर्याय को कोई अवकाश नहीं रहा। पूर्ण शुद्ध पर्याय द्रव्य का सोलह आने निरपेक्ष स्वतः सिद्ध गुण परिणमन है। गुणों का स्वभाव ही नित्यानित्यात्मक है। जब तक पर्याय में विभाव था तब तक गुण और पर्याय का स्वभाव भेद दिखलाना प्रयोजनवान था। अब पर्याय को गुण से भिन्न कहने का कोई प्रयोजन न रहा। वह गुण में समाविष्ट हो जायेगी। जिन आचार्यों ने केवल गुण समुदाय द्रव्य कहा है वह इसी दृष्टि की मुख्यता से कहा है। अब उस द्रव्य को न असद्भूत नय से कुछ प्रयोजन रहा, और पर्याय भिन्न न रहने से उपचरित सद्भूत से भी प्रयोजन न रहा। अनुपचरित सद्भूत तो उपचरित के मुकाबले में था। जब उपचरित न रहा तो अनुपचरित भी व्यर्थ हो गया। उसके लिये आचार्यों ने कहा कि अब द्रव्य को भेद करने का और तरीका है और इन नयों की अब आवश्यकता नहीं। अब तो और ही प्रकारसे भेद होगा, वह प्रकार है गुण भेद। जितने गुणों का वह अखण्ड पिण्ड है बस केवल उतने ही भेद होंगे और कोई भेद न होगा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और न हो सकता है। एक २ गुण को बतलाने वाली एक २ नय। जो गुण का नाम, वही नय का नाम जैसे ज्ञान गुण को बतलाने वाली ज्ञान नय। जहां तक गुण गुणी का भेद है वहां तक व्यवहार नय है। वे सब व्यवहार नय का विस्तार है, परिवार है। ये सब काल्पनिक भेद केवल समझाने की दृष्टि से किया गया है। जो अभेद में भेद करे वह सब व्यवहार है।

अब निश्चय नय को समझाते हैं। निश्चय नय का विषय परवस्तु रहित, विभाव रहित, एकदेश स्वभाव पर्याय रहित, पूर्ण स्वभाव पर्याय को गुणों में समाविष्ट करके, गुण भेद को द्रव्य में समाविष्ट करके अखण्ड वस्तु है। ऐसा कुछ वस्तु का नियम है कि पूर्ण अखण्ड द्रव्य का द्योतक कोई शब्द ही जगत में नहीं है। जो कहोगे वह एक गुण भेद का द्योतक होगा जैसे सत्–अस्तित्व गुण का द्योतक है, वस्तु–वस्तुत्व गुण का, जीव–जीवत्व गुण का, द्रव्य–द्रव्यत्व गुण का। अतः लाचार होकर अभेद के लिये आपको यही कहना पड़ेगा कि भेदरूप नहीं अर्थात् 'नेति' शब्द से वह आशय प्रकट किया जायेगा। अर्थ उसका होगा भेद रूप नहीं —अभेद रूप। यह जीव को हर समय ऐसा दिखलाता है जैसा सिद्ध में है। पुद्गल को हर समय एक. शुद्ध परमाणु। धर्मादिक तो हैं ही शुद्ध।

अब प्रमाण दृष्टि समझाते हैं। यह कहती है, न भेद रूप है, न अभेद रूप है किन्तु जो भेद रूप है, वही तो अभेद रूप है। जो नित्य है वही तो अनित्य है। इत्यादि रूप से दोनों विरोधी धर्मों को एकधर्मी में अविरोध पूर्वक स्थापित करती है।

उपर्युक्त तीनों दृष्टियों का ज्ञान होने पर वस्तु का परिज्ञान हर पहलू से हो जाता है। वस्तु स्वतन्त्र पर से निरपेक्ष, ख्याल में आ जाती है। यहां तक सब ज्ञान का कार्य है। इससे आगे अब नयातीत दशा को समझाते हैं। जो कोई जीव ऊपर बतलाये हुये सब विकल्प जाल को जानकर वस्तु के परिज्ञान से सन्तुष्ट हो जाता है और अपने को मूलभूत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्ध जीवास्तिकाय रूप जानकर उसका श्रद्धान करता है। उपयोग जो अनादि काल से पर की एकत्वबुद्धि, परकर्तृत्व, परभोक्तृत्व में अटका हुआ है, उसको वहां से हटा कर अपने सामान्य स्वरूप की ओर मोड़ता है और सब प्रकार के नय प्रमाण निक्षेपों के विकल्प जाल से हटकर सामान्य तत्त्व में लीन होता हुआ अतीन्द्रिय सुख को भोगता है वह पुरुष नयातीत दशा को प्राप्त होता है. उनको आत्मानुभूति, समयसार, आत्म-ख्याति. आत्मदर्शन, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इत्यादिक अनेक नामों से कहा है। इसका फल कर्म कलङ्क से रहित पूर्ण शुद्ध आत्मा की प्राप्ति है।

प्रश्न १३३—नय किसे कहते हैं।

उत्तर—नित्य-अनित्य आदि विरुद्ध दो धर्म स्वरूप द्रव्य में किसी एक धर्म का वाचक नय है जैसे सत् नित्य है, या सत् अनित्य है अथवा अनन्त धर्मात्मक-वस्तु को देखकर उसके एक एक धर्म का नाम रखना नय है जैसे ज्ञान दर्शन इत्यादिक।

(५०४, ५१३)

प्रश्न १३४—नय के औपचरिक भेद लक्षण सहित लिखो ?

उत्तर—(१) द्रव्य नय (२) भाव नय। पौद्गलिक शब्दों को द्रव्य नय कहते हैं और उसके अनुसार प्रवृत्ति करने करने वाले विकल्प सहित जीव के श्रुतज्ञानांश को भाव नय कहते हैं। (५०५)

प्रश्न १३५—नय क्या करता है ?

उत्तर—वस्तु के अनन्त धर्मों का भिन्न २ ज्ञान कराकर वस्तु को अनन्त धर्मात्मक सिद्ध करता है तथा उसका अनुभव करा देता है।

(५१५)

प्रश्न १३६—नयों के मूल भेद कितने हैं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर—दो (१) द्रव्यार्थिक या निश्चय नय (२) पर्यायार्थिक या व्यवहार नय। (५१७)

प्रश्न १३७—द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं और वे कितने हैं ?

उत्तर—केवल अखण्ड सत् ही जिसका विषय है वह द्रव्यार्थिक है। यह एक ही होता है। इसमें भेद नहीं हैं। (५१८)

प्रश्न १३८—पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं ?

उत्तर—अंशों को पर्यायें कहते हैं। उन अंशों में से किसी एक विवक्षित अंश को कहने वाली पर्यायार्थिक नय है। (५१९)

प्रश्न १३९—व्यवहार नय का लक्षण, कारण और फल बताओ ?

उत्तर—अभेद सत् में विधि पूर्वक गुण गुणी भेद करना व्यवहार नय है। साधारण या असाधारण गुण इसकी प्रवृत्ति में कारण है। अनन्तधर्मात्मक एकधर्मी में आस्तिक्य बुद्धि का होना इसका फल है क्योंकि गुण के सद्भाव में नियम से द्रव्य का अस्तित्व प्रतीति में आजाता है। (५२२, ५२३, ५२४)

प्रश्न १४०—सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण, कारण, फल बताओ ?

उत्तर—विवक्षित किसी द्रव्य के गुणों को उसी द्रव्य में भेद रूप से प्रवृत्ति कराने वाले नय को सद्भूतव्यवहार नय कहते हैं। सत् का असाधारण गुण इसकी प्रवृत्ति में कारण है। एक वस्तु का अस्तित्व दूसरी वस्तु से सर्वथा भिन्न है तथा प्रत्येक वस्तु पूर्ण स्वतन्त्र और स्वसहाय है ऐसा भेद विज्ञान होना इसका फल है। (५२५ से ५२८)

प्रश्न १४१—असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण, कारण, फल और दृष्टान्त बताओ ?

उत्तर—मूल द्रव्य में वैभाविक परिणमन के कारण जो एक द्रव्य के गुण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरे द्रव्य में संयोजित करना असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है। उसकी वैभाविक शक्ति की उपयोगता इस का कारण है। विभाव भाव क्षणिक है। उसको छोड़कर जो कुछ बचता है वह मूल द्रव्य है। ऐसा मानकर सम्यग्दृष्टि होना इसका फल है पुद्गल के क्रोध को जीव का क्रोध कहना यह इसका दृष्टांत है। (५२९ से ५३३)

प्रश्न १४२—अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण, उदाहरण तथा फल बताओ ?

उत्तर—जिस संत् में जो शक्ति अन्तर्लीन है। उसको उसी की पर्याय निरपेक्ष केवल गुण रूप से कहना अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है जैसे जीव का ज्ञान गुण। इस से द्रव्य की त्रिकाल स्वतन्त्र सत्ता का परिज्ञान होता है। (५३४ से ५३९)

प्रश्न १४३—उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण, उदाहरण कारण और फल बताओ ?

उत्तर—अविरुद्धतापूर्वक किसी कारणवश किसी वस्तु का गुण उसी में पर की अपेक्षा से उपचार करना उपचरित सद्भूत व्यवहार नय है। अर्थ विकल्प ज्ञान प्रमाण है यह इसका उदाहरण है। बिना पर के स्वगुण उपचार नहीं किया जा सकता यह इसकी प्रवृत्ति में कारण है। विशेष को साधन बनाकर सामान्य की सिद्धि करना इसका फल है। (५४० से ५४५)

प्रश्न १४४—अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण, कारण, फल बताओ ?

उत्तर—अबुद्धिपूर्वक विभाव भावों को जीव का कहना अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय है। वैभाविक शक्ति का उपयोग दशा में द्रव्य से अनन्यमय होना इसकी प्रवृत्ति में कारण है। विभाव भाव में हेय बुद्धि का होना इसका फल है। (५४६ से ५४८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न १४५—उपचरित असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण, कारण फल बताओ ?

उत्तर—बुद्धि पूर्वक विभाव भावों को जीव के कहना उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है। इसमें पर निमित्त है यह इसका कारण है। अविनाभाव के कारण अबुद्धि पूर्वक भादों की सत्ता का परिज्ञान होता इस का फल है। (५४६ से ५५१)

प्रश्न १४६—उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का मर्म क्या है ?

उत्तर—'ज्ञान पर को जानता है" ऐसा कहना अथवा तो ज्ञान में राग ज्ञात होने से "राग का ज्ञान है" ऐसा कहना अथवा ज्ञाता स्वभाव के भानपूर्वक ज्ञानी "विकार को भी जानता है" ऐसा कहना उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का कथन है।

प्रश्न १४७—अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय का मर्म क्या है ?

उत्तर—ज्ञान और आत्मा इत्यादि गुण-गुणी का भेद करना वह अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है। साधक को राग रहित ज्ञायक स्वभाव की दृष्टि हुई हो तथापि अभी पर्याय में राग भी होता है। साधक स्वभाव की श्रद्धा में राग का निषेध हुआ हो, तथापि, उसे गुण भेद के कारण चारित्र गुण की पर्याय में अभी राग होता है-ऐसे गुण भेद से आत्मा को जाना वह अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है।

प्रश्न १४८—उपचरित असद्भूत व्यवहार नय का मर्म बताओ ?

उत्तर—साधक ऐसा जानता है कि अभी मेरी पर्याय में विकार होता है। उसमें व्यक्त राग-बुद्धि पूर्वक का राग-प्रगट ख्याल में लिया जा सकता है ऐसे बुद्धिपूर्वक के विकार को आत्मा का जानना यह उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है।

प्रश्न १४९—अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नयका मर्म बताओ ?

उत्तर—जिस समय बुद्धिपूर्वक का विकार है उस समय अपने ख्याल में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न आ सके—ऐसा अबुद्धिपूर्वक का विकार भी है; उसे जानना वह अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय है।

प्रश्न १५०—सम्यक् नय का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जो नय तद्गुणसंविज्ञान सहित (जीव के भाव वे जीव के तद्गुण हैं तथा पुद्गल के भाव वे पुद्गल के तद्गुण हैं—ऐसे विज्ञान सहित हो) उदाहरण सहित हो, हेतु सहित और फलवान् (प्रयोजनवान्) हो वह सम्यक् नय है। जो उससे विपरीत नय है वह नयाभास (मिथ्या नय) है क्योंकि पर भाव को अपना कहने से आत्मा को क्या साध्य (लाभ) है (कुछ नहीं)।

प्रश्न १५१—नयाभास का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जीव को पर का कर्ता-भोक्ता माना जाय तो भ्रम होता है व्यवहार से भी जीव पर का कर्ता भोक्ता नहीं है। व्यवहार से आत्मा राग का कर्ता भोक्ता है क्योंकि राग वह अपनी पर्याय का भाव है इसलिये उसमें तद्गुण संविज्ञान लक्षण लागू होता है। जो उससे विरुद्ध कहे वह नयाभास (मिथ्या नय) है।

प्रश्न १५२—सम्यक् नय और मिथ्या नय की क्या पहचान है ?

उत्तर—जो भाव एकधर्मी का हो, उसको उसी का कहना तो सच्चा नय है और एक धर्मी के धर्म को दूसरे धर्मी का धर्म कहना मिथ्या नय है। जैसे राग को आत्मा का कहना तो सम्यक् नय है और वर्ण को आत्मा का कहना मिथ्या नय है।

प्रश्न १५३—नयाभासों के कुछ दृष्टांत बताओ ?

उत्तर—(१) शरीर को जीव कहना (२) द्रव्य कर्म नोकर्म का कर्ता भोक्ता आत्मा को कहना (३) घर धन धान्य स्त्री पुत्रादि बाह्य पदार्थों का कर्ता भोक्ता जीव को कहना (४) ज्ञान को ज्ञेयगत या ज्ञेय को ज्ञानगत कहना इत्यादि। दो द्रव्य में कुछ भी संबंध मानना नयाभास है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न १५४—वास्तविक व्यवहार नयों के नाम बताओ ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य में जितने गुण हैं। उनमें हर एक गुण को भेद रूप से विषय करने वाली उसी नाम की नय है। जितने एक वस्तु में गुण हैं उतनी नय हैं। ये शुद्ध द्रव्य को जानने का तरीका है। जैसे आत्मा के अस्तित्व गुण को बताने वाली अस्ति नय, ज्ञान गुण को बताने वाली ज्ञान नय।

प्रश्न १५५—उपर्युक्त नयों के पहचानने का क्या तरीका है ?

उत्तर—विशेषण विशेष्य रूप से उदाहरण सहित जितना भी कथन है वह सब व्यवहार नय है यही इसके जानने का गुर है।

प्रश्न १५६—निश्चय नय का लक्षण क्या है ?

उत्तर—जो व्यवहार का प्रतिषेधक हो, वह निश्चय नय है। 'नेति' से इस का प्रयोग होता है। यह उदाहरण रहित है।

प्रश्न १५७—व्यवहार प्रतिषेध्य क्यों है ?

उत्तर—क्योंकि वह मिथ्या विषय का उपदेश करता है। वह इस प्रकार द्रव्य में गुण पर्यायों के टुकड़े करता है जैसे परशु से लकड़ी के टुकड़े कर दिये जाते हैं किन्तु द्रव्य अखण्ड एक है उसमें ऐसे टुकड़े नहीं हैं। अतः व्यवहार नय मिथ्या है। व्यवहार नय के कथनानुसार श्रद्धान करने वाले मिथ्या दृष्टि हैं।

प्रश्न १५८—जब वह मिथ्या है तो उसके मानने की आवश्यकता ही क्या है ?

उत्तर—निश्चय नय अनिर्वचनीय है। अतः वस्तु समझने समझाने के लिये व्यवहार नय की आवश्यकता है। यह केवल वस्तु को पकड़ा देता है। इतना ही इसमें कार्यकारीपना हैं क्योंकि वस्तु को पकड़ने का और कोई साधन नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न १५९—निश्चय नय का विषय क्या है ?

उत्तर—जो व्यवहार नय का विषय है वही निश्चय नय का विषय है। व्यवहार नय में से भेद विकल्प निकाल देने पर निश्चय नय का ही विषय बचता है।

प्रश्न १६०—निश्चयनयावलम्बी स्वसमयी है या परसमयी ?

उत्तर—निश्चयनयावलम्बी भी पर समयी है क्योंकि इसमें निषेध रूप विकल्प है। दूसरे दोनों नय साक्षेप हैं। जहां विधि रूप विकल्प होगा वहां निषेधरूप विकल्प भी अवश्य होगा।

प्रश्न १६१—स्वसमयी जीव कौन है ?

उत्तर—जो निश्चयनय के विकल्प को भी पार करके स्वात्मानुभूति में प्रवेश कर गया है। नयातीत अवस्था को स्वसमय प्रतिबद्ध अवस्था कहते हैं।

प्रश्न १६२—निश्चयनय के कितने भेद हैं। कारण सहित बताओ ?

उत्तर—निश्चयनय का कोई भेद नहीं क्योंकि वह अखण्ड सामान्य को विषय करती है अतः उसमें भेद हो ही नहीं सकता। वह केवल एक ही है।

प्रश्न १६३—निश्चयनय के शुद्ध निश्चय, अशुद्ध निश्चय आदि भेद हैं या नहीं ?

उत्तर—नहीं। वे व्यवहार नय के ही नामान्तर हैं। केवल कथनशैली का अन्तर है। जो उन कथनों को वास्तव में ही कोई सामान्य की द्योतक निश्चय नय मान ले तो वह मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न १६४—व्यवहार नय और निश्चयनय का क्या फल है ?

उत्तर—व्यवहारनय को हेय श्रद्धान करना चाहिये। यदि उसे उपोदय माने तो उसका फल अनन्त संसार है। निश्चय नय का विषय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपादेय है। निश्चयनय का विषय जो सामान्य मात्र वस्तु है, यदि उसका आश्रय करे और निश्चयनय का विकल्प भी छोड़े तो स्वसमयी है। उसका फल आत्मसिद्धि है।

प्रश्न १६५—निश्चय और व्यवहार के जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—व्यवहार भेद को कहते हैं। भेद में राग आस्रव बंध संसार है। निश्चय अभेद को कहते हैं। अभेद में मोक्ष मार्ग, वीतरागता, संवर और निर्जरा है।

प्रश्न १६६—फिर आचार्यों ने भेद का उपदेश क्यों दिया ?

उत्तर—केवल अभेद को समझने के लिये। भेद में अटकने के लिये नहीं। जो केवल व्यवहार के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं उनके लिये जिनोपदेश ही नहीं है। ऐसा पुरुषार्थसिद्धयुपाय में कहा है। श्री समयसार जी में व्यवहार को म्लेच्छभाषा और व्यवहारावलम्बी को मलेच्छ कहा है क्योंकि म्लेच्छों के धर्म नहीं होता।

प्रश्न १६७—व्यवहार तो ज्ञानियों के भी होता है ना ?

उत्तर—ज्ञानियों के व्यवहार का अवलम्बन, आश्रय कदापि नहीं होता किन्तु वे तो व्यवहार के केवल ज्ञाता होते हैं। व्यवहार का अस्तित्व वस्तु स्वभाव के नियमानुसार उनके होता अवश्य है पर ज्ञेय रूप से।

प्रश्न १६८—व्यवहार को श्री समयसार जी में प्रयोजनवान कहा है ना ?

उत्तर—तुमने ध्यान से नहीं पढ़ा वहां लिखा है। "जानने में आता हुआ उस काल प्रयोजनवान है।" इसका अर्थ गुरुगम अनुसार यह है कि व्यवहार ज्ञानी की पर्याय में उस समय मात्र के लिए ज्ञेय रूप से मौजूद है न कि इसका यह अर्थ है कि ज्ञानी को उसका आश्रय होता है (श्रीसमयसारजी गाथा १२ टीका)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री पंचास्तिकाय गाथा ७० टीका में लिखा है "कर्तृत्व और भोक्तृत्व के अधिकार को समाप्त करके सम्यक्पने प्रगट प्रभुत्व शक्तिवाला होता हुआ ज्ञान को ही अनुसरण करने वाले मार्ग में चरता है–प्रवर्तता है–परिणमता है–आचरण करता है तब वह विशुद्ध आत्म-तत्त्व की उपलब्धि रूप अपवर्गनगर को पाता है।" तीन काल और तीन लोक में यही एक मोक्षप्राप्ति का उपाय है। श्री प्रवचनसार अन्तिम पंचरत्न में शुद्ध के ही मुनिपना, ज्ञान दर्शन निर्वाण कहा है। और नवमें ग्रीवक में जाने वाले पूर्ण शुद्ध व्यवहारी मुनि को संसार तत्त्व अर्थात् विभाव का राजा या मिथ्यादृष्टियों का सरताज कहा है। ऐसी रहस्य की बातें बिना सद्गुरू समागम नहीं आतीं। ऐसा मालूम होता है कि आपने बिना गुरुगम अभ्यास किया है। यदि बिना गुरुगम तत्त्व हाथ लग जाया करता तो सम्यक्त्व में देशना लब्धि की आवश्यकता न रहती। केवल शास्त्रों से काम चल जाता।

प्रश्न १६९—प्रमाण ज्ञान का स्वरूप क्या है?

उत्तर—जो ज्ञान सामान्य विशेष दोनों स्वरूपों को मैत्री पूर्वक जानता हैं वह प्रमाण है अर्थात् वस्तु के सम्पूर्ण अंशों को अविरोध पूर्वक ग्रहण करने वाला ज्ञान प्रमाण है इसका विषय संपूर्ण वस्तु है। इसके द्वारा सम्पूर्ण वस्तु का अनुभव एक साथ हो जाता है। (६६५, ६७६)

प्रश्न १७०—प्रमाण ज्ञान के भेद बताओ?

उत्तर—प्रमाण के दो भेद है (१) प्रत्यक्ष (२) परोक्ष। असहाय ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं और सहाय सापेक्ष ज्ञान को परोक्ष कहते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान के दो भेद हैं। सकल प्रत्यक्ष और विकल प्रत्यक्ष। केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष है। अवधि मनःपर्याय विकल प्रत्यक्ष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। मतिश्रुत परोक्ष है किन्तु इनमें इतनी विशेषता है कि अवधि मनःपर्याय निश्चय से परोक्ष हैं उपचार से प्रत्यक्ष हैं। मतिश्रुतज्ञान स्वात्मानुभूति में प्रत्यक्ष हैं। परपदार्थ को जानते समय परोक्ष हैं। इतनी विशेषता और है कि आत्म सिद्धि में दो मतिश्रुत ज्ञान ही उपयोगी है। अवधि मनःपर्यय नहीं।

प्रश्न १७१—निक्षेपों का स्वरूप बताओ ?

उत्तर—गुणों के आक्षेप को निक्षेप कहते हैं। इसके चार भेद हैं। नाम स्थापना, द्रव्य और भाव। अतद्गुण वस्तु में व्यवहार चलाने के लिये जो नाम रक्खा जाता है वह नाम निक्षेप है। जैसे किसी व्यक्ति में जिनके गुण नहीं है पर उसका नाम जिन रक्खना उसी के आकार वाली वस्तु में यह वही है ऐसी बुद्धि का होना स्थापना निक्षेप है जैसे प्रतिमा। वर्तमान में वैसा न हो किन्तु भावि में नियम से वैसा होने वाले को द्रव्य निक्षेप कहते हैं जैसे गर्भ जन्म में ही भगवान को जिन कहना। जिस शब्द से कहा जाय, उसी पर्याय में होने वाली वस्तु को भाव निक्षेप कहते हैं जैसे साक्षात् केवली को जिन कहना।

नय प्रमाण प्रयोग पद्धति

प्रश्न १७२—द्रव्य गुण पर्याय पर पर्यायार्थिक नय का प्रयोग करके दिखाओ ?

उत्तर—द्रव्य, गुण पर्याय वाला है अर्थात् जो द्रव्य को भेद रूप कहे जैसे गुण है। पर्याय है। और उनका समूह द्रव्य है। उस द्रव्य में जो द्रव्य है वह गुण नहीं है, जो गुण है वह द्रव्य नहीं है, पर्याय भी द्रव्य गुण नहीं है। यह पर्यायार्थिक नय का कहना है। (७४७ दूसरी पंक्ति,७४६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न १७३—द्रव्य गुण पर्याय पर द्रव्यार्थिक नय का प्रयोग करो ?

उत्तर—तत्त्व अनिर्वचनीय है अर्थात् जो द्रव्य है वही गुण पर्याय है। जो गुण पर्याय है वही द्रव्य है क्योंकि पदार्थ अखण्ड है। यह द्रव्यार्थिक नय का कहना है। (७४७ प्र० पंक्ति, ७५० प्र० पं०)

प्रश्न १७४—द्रव्य गुण पर्याय पर प्रमाण का प्रयोग करो ?

उत्तर—जो अनिर्वचनीय है, वही गुण पर्याय वाला है, दूसरा नहीं है अथवा जो गुण पर्याय वाला है वही अनिर्वचनीय है, इस प्रकार जो व्यवहार निश्चय दोनों के पक्ष को मैत्री पूर्वक कहे, वह प्रमाण है। (७४८,७५० दूसरी पंक्ति)

प्रश्न १७५—अनेक नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, तीनों अनेक हैं। अपने अपने लक्षण से भिन्न भिन्न हैं। यह अनेक नामा व्यवहार नय का पक्ष है। ७५२

प्रश्न १७६—एक नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—नाम से चाहे द्रव्य कहो अथवा गुण कहो अथवा पर्याय कहो पर सामान्यपने ये तीनों ही अभिन्न एक सत् है इ सलिये इन तीनों में से किसी एक के कहने से बाकी के दो भी विना कहे ग्रहण होते ही हैं यह एक नामा व्यवहार नय है। ७५३

प्रश्न १७७—शुद्धद्रव्यार्थिकनय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—निरंश देश होने से न द्रव्य है, न गुण है, न पर्याय है और न विकल्प से प्रगट है यह शुद्धद्रव्यार्थिकनय का पक्ष है। ७५४

प्रश्न १७८—प्रमाण का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—पर्यायार्थिक नय से जो सत् द्रव्य गुण पर्यायों के द्वारा अनेक रूप भेद किया जाता है, वही सत् अंशरहित (अखण्ड) होने से अभेद्य एक है यह प्रमाण का पक्ष है। ७५५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न १७९—अस्ति नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—विपक्ष की अविवक्षा रहते वस्तु सामान्य अथवा विशेष जिसकी विवक्षा हो, उस रूप से है। यह कहना एक अस्ति नामा व्यवहार नय है। ७५६

प्रश्न १८०—नास्तिनय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—विपक्ष की विवक्षा रहते वस्तु सामान्य अथवा विशेष जिस रूप से नहीं है वह नास्ति पक्ष है। ७५७

प्रश्न १८१—अस्ति नास्ति पर द्रव्यार्थिक नय का प्रयोग बताओ?

उत्तर—तत्त्व स्वरूप से है यह भी नहीं है। तत्त्व पररूप से नहीं है यह भी नहीं है क्योंकि वस्तु सब विकल्पों से रहित है यह शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का पक्ष है। ७५८

प्रश्न १८२—अस्ति नास्ति पर प्रमाण का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—जो परस्वरूप के अभाव से नही है, वही स्वरूप के सद्भाव से है, तथा वही अनिर्वचनीय है यह सब प्रमाण पक्ष है। ७५९

प्रश्न १८३—अनित्य नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—सत् प्रत्येक समय उत्पन्न होता है और नाश होता है यह अनित्य नामा व्यवहार नय है। ७६०

प्रश्न १८४—नित्य नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—सत् न उत्पन्न होता है, न नाश होता है, वह सदा एक रूप ध्रुव रहता है यह नित्य नामा व्यवहार नय है। ७६१

प्रश्न १८५—निश्चय नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—सत् न नाश होता है, न उत्पन्न होता है न ध्रुव है, वह तो निर्विकल्प है यह निश्चय नय का पक्ष है। ७६२

प्रश्न १८६—प्रमाण का प्रयोग बताओ ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर—जो अनित्य की विवक्षा में नित्य रूप से नहीं है वही नित्य की विवक्षा में अनित्य रूप से नहीं है। इस प्रकार तत्व नित्यानित्य है यह प्रमाण पक्ष है। ७६३

प्रश्न १८७—अतत् नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—वस्तु में नवीन भाव रूप परिणमन होने से "यह तो वस्तु ही अपूर्व २ है" यह अतत् नामा व्यवहार नय का पक्ष है। ७६४

प्रश्न १८८—तत् नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—वस्तु के नवीन भावों से परिणमन करने पर भी तथा पूर्व भावों से नष्ट होने पर भी यह अन्य वस्तु नहीं है किन्तु वही की वही है यह तत् नय नामा व्यवहार नय का पक्ष है। ७६५

प्रश्न १८९—शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—वस्तु में न नवीव भाव होता है, न पराचीन भाव का नाश होता है, क्योंकि न वस्तु अन्य है, न वही है किन्तु अनिर्वचनीव अखंड है यह शुद्धद्रव्यार्थिकनय का पक्ष है। ७६६

प्रश्न १९०—प्रमाण का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—जो सत् प्रतिक्षण नवीन २ भावों से परिणमन कर रहा है वह न तो असत् उत्पन्न है और न सत् विनष्ट है यह प्रमाण पक्ष है। ७६७

नोट—हमने केवल अस्तिपक्ष के प्रश्नोत्तर दिए हैं नास्ति पक्ष के छोड़ दिये हैं। जैसे प्रमाण के दिए हैं प्रमाणाभास के छोड़ दिए हैं। शंका समाधान द्वारा जो पाठ पीसा गया है, उसके प्रश्नोत्तर भी नहीं दिये हैं। वे अध्यापक गण स्वयं तैयार करावें।

हरिगीत

वर्ण से पद, पद से वाक्य और वाक्य से रचना बनी।
हम तो रमते रूप में, हमको जरूरत क्या पड़ी ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi